

गुरु शिष्य सम्वाद

(रामाश्रम सत्संग प्रकाशन)

[प्रसादी]

सन्त सत्गुरु डा० श्रीकृष्ण लाल जी
सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

१९९१

मुद्रक प्रकाशक :

आचार्य, रामाश्रम सत्संग
सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

मूल्य ५ रुपये

गुरु-शिष्य सम्वाद

लेखक—

सन्त सत्गुरु डा० श्रीकृष्ण लाल जी साहब
रामाश्रम सत्संग, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

मुद्रक और प्रकाशक—

आचार्य रामाश्रम सत्संग,
सिकन्द्राबाद (उत्तर प्रदेश)

विषय सूची

अध्याय १	पृष्ठ संख्या
परिचय	१
गुरु-शिष्य का प्रथम मिलन	३
अध्याय २ (अ)	
परमात्मा का प्रेम	१०
अध्याय २ (ब)	
अध्यात्म विद्या क्या है ? सूफी या साध किसे कहते हैं ? अन्तःकरण की शुद्धि ।	१५
अध्याय ३	
दिल की सफाई । गुरु की आवश्यकता ।	२४
अध्याय ४	
गुरु-भक्ति का भेद और पाँच प्रश्न	३१
अध्याय ५	
गुरु और जातीयता का प्रश्न	५२
अध्याय ६	
सन्तों का सप्त सोपान—शैतान, एक पहेली	६०
अध्याय ७	
दीक्षा लेने की आवश्यकता	८३
कर्म, उपासना, ज्ञान और आत्म ज्ञान ।	१००
गृहस्थ और वैराग्य—उदाहरण	१०५
अभ्यास और साधन	१०८
अध्याय ८	
शिष्य पर कृपा और दर्शन ।	११४

पाठकों से निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक परमार्थ प्रेमियों के समक्ष रखते हुए मुझे हर्ष होता है। हिन्दू धर्म में सन्त मत के अनुयायी गुरु भक्ति पर विशेष बल देते हैं। इस्लाम धर्म में भी सूफ़ी मतानुयायी गुरु भक्ति को प्राथमिकता देते हैं। दोनों की धारणा है कि बिना गुरु के मुक्ति सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में दोनों मतों का समन्वय करके ब्रह्मविद्या की शिक्षा को गुरु-शिष्य सम्वाद के रूप में सुगठित किया गया है। इस दृष्टि से यह अपनी एक विशेषता रखती है। पाठको को इसमें अनेकों ऐसे शब्द मिलेंगे जो अरबी तथा फ़ारसी भाषा के हैं और जिनका प्रचलन सूफ़ियों में बहुतायत से होता है। यथा सम्भव उनके पर्यायवाची हिन्दी शब्द, जो सन्तमत में प्रचलित हैं, यथास्थान दे दिये गये हैं। अन्यथा उनको सरल हिन्दी में वहीं समझा दिया गया है।

उक्त दोनों मत जातीयता के पक्ष में नहीं हैं। मनुष्य का जन्म चाहे किसी कुल और वर्ण में हुआ हो उनके लिये सब समान हैं। अतः एक विदेशी शिष्य का (जो इस्लाम धर्म का अनुयायी था) भारत में आकर परमार्थ की शिक्षा प्राप्त करना कोई अनहोनी बात नहीं है। सन्तजन धार्मिक संकीर्णता से ऊपर होते हैं। परमार्थ में जात-पाँत नहीं देखी जाती, अधिकार देखा जाता है। जो दीन है और ईश्वर प्राप्ति की सच्ची चाह रखता है, वही ब्रह्मविद्या का अधिकारी है। सन्तों के द्वार ऐसे ही जिज्ञासुओं के लिये सदा खुले रहते हैं चाहे वे किसी जाति-वर्ण के हों।

“जात-पाँत पूछे ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।”

विभिन्न धर्मों में मतभेद भले ही हों, किन्तु लक्ष्य सब का एक ही है। अतः उस 'एक' लक्ष्य को सामने रख कर पाठक इस पुस्तक का गहराई से अध्ययन करें तो आशातीत लाभ होगा।

सिकन्द्राबाद

विनीत : - आचार्य श्रीकृष्ण लाल,

दिनांक २०-३-६८ ई०

रामाश्रम सत्संग, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

आचार्य मेरे गुरुदेव दिगन्त सन्त सत्गुरु परम पूज्य
श्रीमन् महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ लालाजी)

(फ़तहगढ़ निवासी)

के कल्याणप्रद चरण कमलों में

सादर सविनय समर्पित।

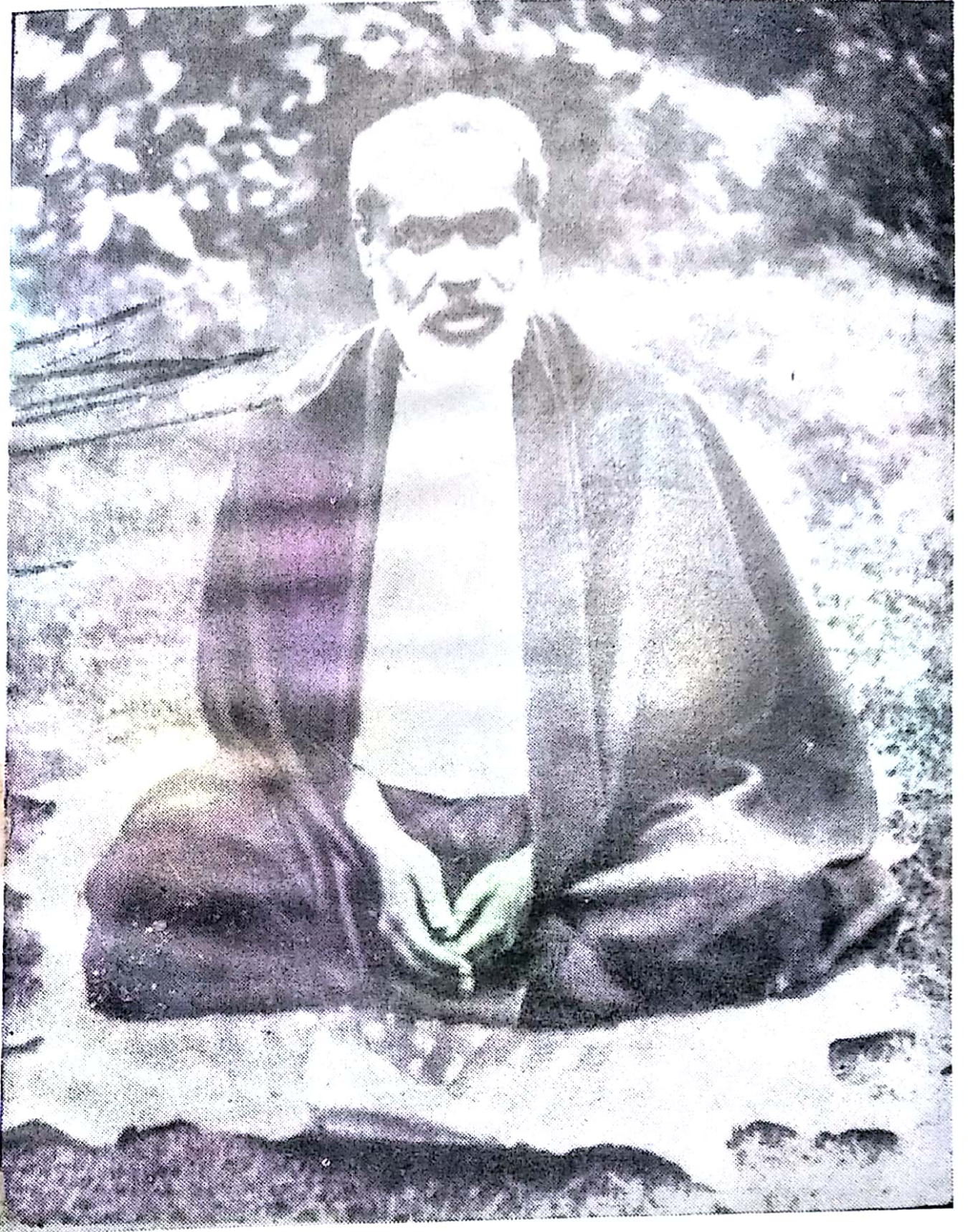
आसी श्रीकृष्ण

मुद्रक :- विवेक मुद्रणालय, गाजियाबाद

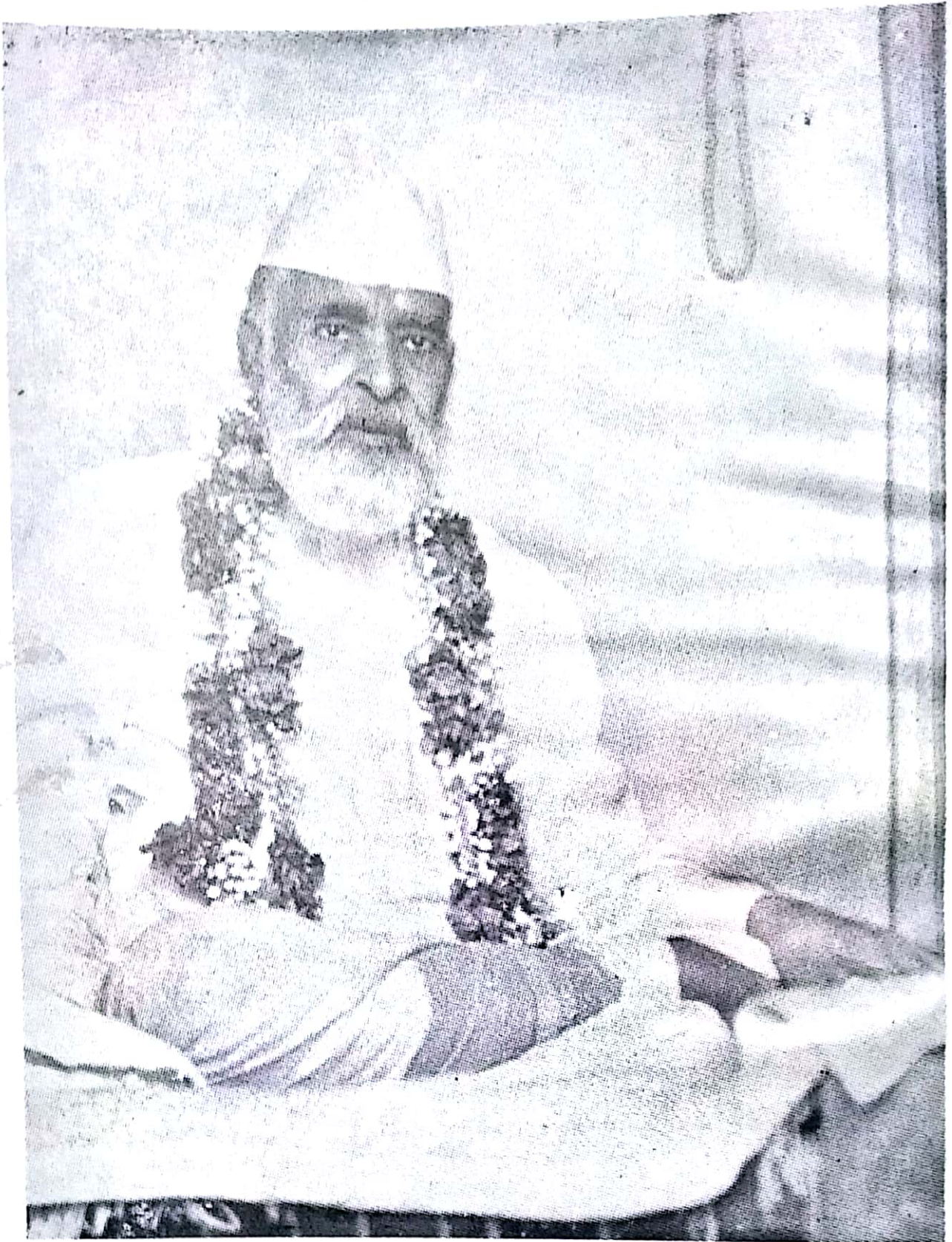
प्रकाशक—डा० करतार सिंह, आचार्य, रामाश्रम सत्संग
सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १००० (१९६८)

द्वितीय संस्करण २००० (१९८२)



समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ लाला जी)
फतहगढ़, उ० प्र० निवासी (जन्म १८७३—निर्वाण १९३१)



एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका। वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ। — (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)
(जन्म १५-१०-१८६४, निर्वाण १८-५-१९७०)

गुरु शिष्य सम्वाद

अध्याय १

परिचय

भारतवर्ष सदा से ब्रह्मविद्या की खान रहा है। जितने अवतार, जितने ऋषि मुनि, सन्त और भक्तजन, औलिया, पीर, पैगम्बर, एशिया में, विशेष तौर पर भारत भूमि में हुए, और किसी देश में नहीं हुए। धर्म और ब्रह्मविद्या के मामले में यह देश सब देशों का सिरताज रहा है। भगवान राम के युग की छाप आज भी भारत के निकटवर्ती देशों में मौजूद है। लंका, जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप-समूह आदि में आज भी रामलीला की प्रथा मौजूद है भले ही वहां के निवासियों का वर्तमान धर्म कुछ भी हो। बौद्ध धर्म यहीं से विदेशों में फैला और सभी पूर्वी देशों पर छा गया। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जैसे महापुरुष धर्म की पताका लेकर पश्चिमी देशों में गये और वहाँ उन्होंने वेदान्त के केन्द्र स्थापित किये। वेद और पुराण इसी देश में लिखे गये। संसार भर में मान्य श्रीमद्भगवत गीता इसी भारत भूमि की अनुपम देन है।

संसार के कोने कोने से जिज्ञासु लोग इस देश में ब्रह्म-विद्या सीखने आते रहे हैं। सिकन्दर महान भी ब्रह्मविद्या जैसे

घन को इस देश से अपने देश को ले जाने का बड़ा इच्छुक था। दुर्भाग्य-वश उसकी मृत्यु इस इच्छा के पूर्ण होने से पहले ही हो गई।

वर्तमान युग में पाश्चात्य देशों की सभ्यता की छाप भारतवर्ष पर पड़ी है और यहाँ के लोग माया और मायावी सामानों की तरफ दौड़ रहे हैं। शारीरिक सुखों के साधन जितने अन्य देशों में उपलब्ध हैं उतने इस देश में अभी नहीं हैं। बल्कि यों कहना चाहिये कि इस मामले में यह देश पाश्चात्य देशों से बहुत पीछे है। परन्तु ब्रह्मविद्या के मामले में आज भी यह दुनियाँ को रास्ता दिखाता है। ऋषियों और सन्तों की आज भी यहाँ कमी नहीं है और दूसरे देशों से आजकल भी जिज्ञासु ब्रह्मविद्या सीखने के लिये यहाँ आते हैं।

अब से कई सौ साल पहले की बात है। एक मुसलमान जिज्ञासु, जो दूर देश के निवासी थे और जिन्हें ब्रह्मविद्या सीखने का बड़ा चाव था, घूमते फिरते सच्चाई की खोज में भारतवर्ष में आये। उन दिनों एक महान सन्त बनारस में रहा करते थे। वे आत्मदर्शी और युग प्रवर्तक थे। ब्रह्मविद्या के सुर्य थे। जिज्ञासु ने उनकी चर्चा सुनी और बनारस उनकी सेवा में गये। कुछ दिन उनके चरणों में रह कर ब्रह्मविद्या सीखी और फिर अपने देश को लौट गये। उनके मन में जितनी भी शंकायें थी, उन महा-पुरुष ने उन सबका समाधान पूर्ण रूप से किया। यहाँ वे शंकायें और उनका समाधान "गुरु-शिष्य संवाद" के रूप में दिया जा रहा जिसका अध्ययन करके ब्रह्मविद्या के इच्छक लाभ उठा सकते हैं।

गुरु-शिष्य संवाद

गुरु शिष्य का प्रथम मिलन

जब शिष्य दूर देश से चलकर भारत में आया और गुरु की खोज में निकला तो पूछते पूछते बनारस जा पहुंचा। गुरुदेव आत्मदर्शी थे। जान गये कि अमुक दिन और अमुक समय पर शिष्य सेवा में आयेगा। पहले ही दिन धर्म सम्बन्धी तुच्छ बातें उसके मन से निकालने का निश्चय कर लिया। वे जानते थे कि शिष्य मुस्लिम धर्म का अनुयायी है इसलिए उन्होंने उसे धर्म की हीन संकुचित विचार धारा से ऊँचा उठा कर परमार्थपथ पर लाने के लिये पहला आघात किया। उन्होंने प्रातःकाल ही एक सुअर अपने द्वार पर बंधवा दिया और स्वयं झरोखे में बैठ कर उसके आने की राह देखने लगे। निश्चित समय पर शिष्य आया। द्वार पर सुअर बंधा देखा तो दिल बेचैन हो गया। तड़प उठा, क्योंकि मुसलमान सुअर से घृणा करते हैं और अगर किसी शुभ कार्य को जाते समय वह सामने आजाये तो उसे बहुत बुरा मानते हैं।

शिष्य के मन में घृणा और क्रोध पैदा हो गया और गुरु के दर्शन किये बिना ही लौटने का इरादा कर लिया। गुरुदेव जान गये और उन्होंने पुकार कर कहा —“वत्स, तुम तो मुझ से मिलने के लिये बड़ी दूर की यात्रा करके आये हो। अब बिना मिले क्यों वापिस जाना चाहते हो ?”

शिष्य ने मुड़ कर देखा कि गुरुदेव झरोखे में बैठे मुस्करा रहे हैं। उनकी पवित्र और ज्योतिर्मय भव्य मूर्ति के दर्शन होते ही शिष्य का मस्तक स्वयं नत हो गया। उसने धरती छूकर उन महापुरुष को अत्यन्त आदरपूर्वक नमस्कार किया और निवेदन

किया—“महाराज ने बाहर हराम बाँध रखा है, अन्दर कैसे आऊँ ?”

गुरुदेव मुस्कराये—“वत्स, जो वस्तु हराम है वह बाहर रखने की है या भीतर रखने की ? मैं तो जिस वस्तु को हराम समझता हूँ उसे बाहर ही निकाल देता हूँ और बाहर ही बाँध देता हूँ जिससे दिल के भीतर फिर न आने पाये । जो लोग हराम के विचार को अन्दर रख छोड़ते हैं वे और लोग हैं । मैं ऐसा नहीं करता ।”

इस परम पुनीत सन्त-वाणी को सुन कर शिष्य की आँखें खुल गईं । वह बात की सचाई को समझ गया । उसने जाना कि गुरुदेव वास्तव में कोई महान सन्त हैं । वह दौड़ कर उनके चरणों में लिपट गया । अपनी भूल के लिए पछताया, क्षमा याचना की और उनकी संगति से उनका कृपापात्र बना ।

जिस मनुष्य को किसी महापुरुष का कृपाभाजन बनना होता है, वह चाहे कहीं का रहने वाला हो और कोई क्यों न हो, उसे उनके पास जाना ही पड़ता है, ऐसा प्रकृति का नियम है, जिसे सब जानते हैं । वह शिष्य धर्म का मुसलमान और दूर देश का निवासी अपना आध्यात्म का हिस्सा लेने इतनी दूर चल कर भारतवर्ष में आता है और ब्रह्मविद्या सीखता है । इसी प्रकार जब किसी महापुरुष को अपनी ब्रह्मविद्या की पूँजी किसी को सुपुर्द करनी होती है तो उसे भी किसी न किसी तरह दूर की यात्रा करके वहाँ जाना पड़ता है जहाँ वह व्यक्ति रहता है जिसे वह पूँजी सुपुर्द करनी है । यह एक ऐसी आश्चर्य की बात है कि जिसके समझने में लोग कठिनाई का अनुभव करेंगे । प्यासा कुएँ के पास जाता है परन्तु कभी-कभी कुएँ को भी प्यासे के पास आना

पड़ता है। अंशी को अंश के साथ, अर्थात् ईश्वर को जीव के साथ प्रेम है और अंश को अंशी के साथ। बूँद को समुद्र की चाह है परन्तु समुद्र को भी बूँद से प्रेम है। आकर्षण दोनों ओर से होता है। जब दोनों का परस्पर मिलन हो जाता है तो बूँद को समुद्र में लहराते सब देखते हैं किन्तु समुद्र को बूँद में लहराते हुए केवल ज्ञानी पुरुष ही देख सकता है।

१. बिन्दु समाना सिन्धु में, यह देखे सब कोय ।
सिन्धु समाना बिन्दु में, विरला देखे कोय ॥
२. सिन्धु समाना बिन्दु में, सिन्धु बिन्दु का रूप ।
बिन्दु-सिन्धु के रूप में, भ्रलके अगम अनूप ॥
३. पहले बिन्दु का भान है, पीछे सिन्धु का ज्ञान ।
बिन्दु सिन्धु दोनों तजे, तब पावै निर्वान ॥
४. बिन्दु चला सत-सिन्धु को, समभ समभ पग धार ।
यह देखा निज-रूप को, भया सार का सार ॥
५. यह तो गति है अटपटी, सट-पट लखै न कोय ।
जब मन की रट-पट मिटै, भट-पट दर्शन होय ॥

गुरुदेव ने प्रेम पूर्वक आदर के साथ शिष्य को अपने पास रखा। उसके बाद उसके आने का कारण पूछा।

शिष्य ने उत्तर में निवेदन किया "महाराज, मेरे देश में एक कहावत बड़ी प्रसिद्ध है कि जब हज़रत मौहम्मद साहब नुमाज़ पढ़ा करते थे तो अक्सर कहा करते थे कि हिन्दुस्तान की तरफ़ से एक ठंडी हवा आती मालूम होती है। अब तक यह बात मेरी समझ में नहीं आई कि हज़रत बार बार यह बात क्यों कहते थे और इस बात में क्या भेद छिपा हुआ है?"

गुरुदेव हँसे— “वत्स, क्या अभी तक तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं है ? बड़ा आश्चर्य है, यद्यपि तुम भी इसी ठंडी हवा की शीतलता का अनुभव करने यहाँ आये हो । सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ । जो कहावत तुम्हारे देश में प्रचलित है, वह सत्य है और उसका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान असली ब्रह्मविद्या का श्रोत है । आदि में आध्यात्म विद्या का ज्ञान यहीं से प्रारम्भ हुआ, यहीं उसका पालन पोषण हुआ और यहीं वह अपनी उच्चतम पूर्णता को प्राप्त हुआ । दूसरे देशों को केवल एक अंश रूप में प्राप्त हो सका और वह अंश भी वहाँ पूर्णता को प्राप्त न हो सका और न कभी पूर्ण हो सकता है । ब्रह्मविद्या चित्त की शान्ति और आनन्द प्राप्त करने का एक साधन है । उस साधन को केवल हिन्दुस्तान से ही विशेष लगाव है । अन्य देशों से न उसे इतना लगाव है और न सम्बन्ध । जिस प्रकार किसी देश में विशेष प्रकार के फल-फल, जीव-जन्तु, अनाज इत्यादि पैदा होते हैं, परन्तु दूसरे देशों की जमीन उसके योग्य नहीं होती, उसी प्रकार इस पवित्र भारत भूमि में भी विशेष प्रकार के फल, मेवे, अनाज, जीव-जन्तु व अन्य सामिग्री पैदा होती है जो अन्य देशों में नहीं होती । यदि पैदा करने की कोशिश भी की जाती है तो या तो वास्तव में पैदा ही नहीं होती, और यदि किसी कृत्रिम उपाय से पैदा भी हुई तो उसमें वह स्वाद और रंग रूप नहीं आता । उदाहरण के तौर पर भारत के फल आम को ही ले लीजिये । वास्तव में तो यह अन्य किसी देश में पैदा ही नहीं होता और यदि होता भी हो तो ऐसा स्वादिष्ट कभी नहीं हो सकता जैसा यहाँ होता है । इसी प्रकार जिसको तुम अपने देश में तसव्वुफ़ कहते हो और इस देश में उसको ब्रह्मविद्या कहते हैं, उसके पालन पोषण और उन्नति के योग्य केवल यही देश है, दूसरा नहीं । तुम्हारे यहाँ सूफियों को घृणा की दृष्टि से देखा

जाता है और कभी कभी उनकी हत्या भी कर दी जाती है। किन्तु इस देश में सूफ़ियों और वेदान्तियों को विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ तक है कि यदि वे ईश्वर और धर्मग्रन्थों को ख्याली और बनावटी भी कह दें तो उनसे कोई कुछ पूछने नहीं जाता। उन्हें कोई बुरा नहीं समझता बल्कि ऐसे व्यक्तियों का भारत में विशेष आदर है। यही कारण है कि हज़रत मौहम्मद साहब नुमाज़ पढ़ने के पश्चात् बहुधा कहा करते थे कि हिन्दुस्तान की तरफ़ से ठंडी हवा के झोंके आते हैं।

शिष्य—“महाराज, हिन्दू तो इस्लाम धर्म के दुश्मन हैं और नास्तिक व बेदीन हैं। उनके बीच ब्रह्मविद्या की उन्नति किस तरह होती होगी ?”

गुरु “यह तुम्हारी बड़ी भूल है। हिन्दू किसी धर्म से लड़ाई भगड़ा नहीं रखते और न कभी धार्मिक विषयों में किसी दूसरे धर्म वालों से लड़ते हैं। उनको तो सदा यहीं शिक्षा मिलती रही है कि सब मनुष्य, चाहे वे किसी भी देश, जाति, वर्ग और समाज के हों, भिन्न-भिन्न रीतियों और तरीकों से एक ही ईश्वर की उपासना करते हैं। जिनका आदर्श इतना ऊँचा है और विचार इतने उच्च हैं वे दूसरों से लड़ाई भगड़ा एवं तर्क-वितर्क क्यों करेंगे? हिन्दू बेदीन अथवा नास्तिक नहीं हैं बल्कि जिसको दीनदार या आस्तिक कहा जाता है वे वास्तविक मानियों में हिन्दू ही हैं।”

“ब्रह्मविद्या भारतवर्ष की एक अनुपम विभूति है। वह हिन्दू सभ्यता की पैतृक सम्पत्ति है। दूसरे धर्मों में तो ब्रह्मविद्या को गजलों और लतीफ़ों द्वारा केवल संकेत रूप में दिया है, खोल कर वर्णन नहीं किया गया है। किन्तु हिन्दू धर्म में इसको भली भाँति

समझाया गया है। इस विद्या की जितनी उन्नति यहाँ हुई उसका लेशमात्र भी अन्य देशों को नसीब नहीं हुआ। तुम स्वयं विचारो, जब अपने देश में तुम्हें सन्तोष प्राप्त न हुआ तब तुम विवश होकर यहाँ आये। अब अवश्य ही तुम्हें आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी।”

शिष्य निरुत्तर हो गया। सोचने लगा। फिर उसने पूछा—
“क्या मुसलमान भी यहाँ हिन्दू गुरुओं से दीक्षा प्राप्त करते हैं?”

गुरुदेव हँसे और कहने लगे “आध्यात्म विद्या में हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न नहीं उठता। यह विद्या धार्मिक संकीर्णता से ऊपर है। ब्रह्मविद्या की दृष्टि से न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान। सब ईश्वर के बन्दे हैं। जिसे सच्चे ज्ञान की खोज है वह इस भगड़े में नहीं पड़ता। इससे रास्ता खोटा हो जाता है। कबीर साहब कौम के मुसलमान थे। उन्होंने हिन्दू गुरु स्वामी रामानन्द जी से दीक्षा ली। यद्यपि हिन्दुओं को अपनी जाति और वर्ण का बड़ा अहंकार है, फिर भी एक बड़ी संख्या में वे कबीर साहब के शिष्य हुए।”

“हिलमिल खेलूँ” शब्द में, अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पण्डित क्या शेख ॥”

शिष्य—“महाराज, यह बातें तो नितान्त सत्य हैं। इनका एक साथ ज्ञान होना महा कठिन है। मैं श्री महाराज की सेवा में अपना ज्ञान परिपक्व और पूर्ण करने आया हूँ।”

गुरुदेव—“तुम कुछ दिनों यहाँ रह कर मेरी संगति का लाभ उठाओ। मैं सत्संग में नित्य तुम्हें प्रवचन सुनाता रहूँगा। जो प्रश्न

तुम करोगे उसका उत्तर देता जाऊँगा । शनैः शनैः सत्संग लाभ से तुम्हारे ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायगी ।”

इस प्रकार संत के सत्संग के तनिक देर के प्रभाव से शिष्य उनका कृपा-पात्र बना और उनके घर अतिथि बन कर रहने लगा । रहने के लिये एक कोठरी दे दी गई । रात उसी में व्यतीत की ।

— — —

ॐ

अध्याय २

(अ)

परमात्मा का प्रेम

प्रातःकाल शिष्य शौच-स्नान से निवृत्त होकर गुरुदेवर के पास गया। ये पहले से ही सत्संग में पधारे हुए थे। झुक कर नम्रता पूर्वक नमस्कार किया और आज्ञा लेकर दीनता पूर्वक एक ओर को बैठ गया।

गुरुदेव बोले—“वत्स, प्रेम जब पूर्ण होकर अपनी पराकाष्ठा को पहुंचता है तो वही परमात्मा है। सूफी लोगों की भाषा में मुहब्बत का कमाल परमात्मा है और वही वास्तविक आकर्षण का कारण है। परमात्मा अंशी है और जीव उसका अंश। जब तक अंश यानी जीव में प्रेम का संचार न हो तब तक अंशी यानी परमात्मा में उसका तत्व दिखाई नहीं देता। जब जीव में प्रेम या खिचाव पैदा होता है तब अंशी यानी परमात्मा अपनी कृपा तथा प्रेम को उसके अन्तर में प्रकट करता है। यह सिद्धान्त है। तुमको पूर्ण स्वतन्त्रता है कि जो बातें तुम्हारी समझ में न आयें उनको पूछते चलो। मैं तुम्हें खोल कर समझाऊंगा।”

“सुनो अंशी (परमात्मा) के सम्पूर्ण गुण अंश (जीव) में आंशिक रूप में छिपे रहते हैं। जीव सीमित हैं किन्तु आवश्यकता यह है कि उसमें लगन और जिज्ञासा हो जिससे उसके हृदय की भावनायें परमात्मा की ओर आकृष्ट हों। तभी सच्चा फल प्राप्त हो जायेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि दीपक पहले से ही जल रहा है। शमा के जलने और रोशन होने में कोई शक नहीं है। किन्तु परवाने यानी पतंगे के भीतर जब तक प्रकाश के लिये चाह और प्रेम भाव पैदा नहीं होगा और वह स्वयं प्रकाश की ओर अपना ध्यान नहीं ले जायगा और न वह पतंगे को अपने हृदय से लगायेगा और न ही वह उसे अपने प्रेम का अधिकारी बनायेगा। यह एक गूढ़ रहस्य की बात है। पतंगे में जब प्रेम और मिलन की चाह होगी तभी दीपक में उस प्रेम-भाव को परखने का अनुभव होगा। फ़ारसी की एक कविता है :

इश्क अव्वल दर दिले माशूक पैदा मीं शबद ।
चूँ न सोज़द शमाँ, कै परवाना शैदा मीं शबद ॥

(भावार्थ—इश्क पहले दिल में माशूक के पैदा हुआ ।

शमाँ सोजाँ देख कर परवाना तब शैदा हुआ ॥)”

शिष्य—“हे प्रभु ! मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आया । कृपा करके इसे और स्पष्ट कर दीजिये ।”

गुरुदेव—“इस एक ही विषय में कई बातें एक साथ मिली हुई हैं। पहली बात यह है कि परमात्मा के सम्पूर्ण गुण यानी सारे तत्व जीवात्मा में आंशिक रूप में छिपे रहते हैं। किन्तु संसार की विषय वासनाओं में लिप्त रहने के कारण उसकी आत्मा के ऊपर

इन्द्रिय-वासनाओं, प्रेम और घृणा आदि बातों के स्थूल आवरण आगये हैं। आत्मा अपने असली रूप में रहते हुए भी इन आवरणों से ढँक गई है। जब तक यह आवरण उसके ऊपर से हट नहीं जाते तब तक आत्मा का असली रूप और गुण प्रकाश में नहीं आते। जैसे विजली के किसी लट्ठू (bulb) पर कुछ रंगीन कागज़ मढ़ दिये जायें तो उसका प्रकाश और गर्मी दोनों फीके पड़ जायेंगे। जितने अधिक और जितने स्थूल पर्दे होंगे उसी के अनुसार प्रकाश और गर्मी, दोनों कम होते जायेंगे। यदि हम चाहते हैं कि विजली का प्रकाश हमें असली रूप में मिले तो हमें उन कागज़ के पर्दों को हटाना होगा। उसके बाद ही यह सम्भव हो सकेगा कि हमें प्रकाश अपने असली रूप में मिले।

इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा (जीवात्मा) पर वासनाओं अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के आवरण पड़े हुए हैं। यदि हम चाहते हैं कि आत्मा के असली रूप और गुण प्रकट हों तो इन ऊपरी आवरणों को हटाना पड़ेगा, चाहे वे इन्द्रिय सम्बन्धी हों या मन, बुद्धि आदि सम्बन्धी।”

“दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार आग की एक चिनगारी में आग के सम्पूर्ण गुण वर्तमान रहते हैं; बालू के एक कण में बालू के सभी गुण होते हैं; गंगाजल या समुद्र के जल की एक बूँद में गंगा जी या समुद्र के सब गुण वर्तमान रहते हैं; सूर्य की एक किरण में सूर्य देवता के सब गुण मौजूद रहते हैं; उसी प्रकार जीवात्मा में परमात्मा के समस्त गुण वर्तमान हैं क्योंकि जीवात्मा और परमात्मा तत्व की दृष्टि से एक ही है। जिस तरह सूर्य की एक किरण और सूर्य में जल को एक बूँद और सागर में, गुण (quality) एक ही है, केवल अन्तर मात्रा (quantity) का है,

उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का अन्तर है। जिस समय जीवात्मा के ऊपर से विषयादि के आवरण हट जाते हैं अंशी अपने अंश में समा जाता है, पूर्ण हो जाता है। सीमित (limited) न रह कर निस्सीम (unlimited) हो जाता है। वह बन्धनों से मुक्त होकर निर्बन्ध और दुर्बल से महाबलवान बन जाता है।”

तीसरी बात यह है कि जैसे आग की एक चिनगारी और अग्निकुण्ड में जो सम्बन्ध है, जल की एक बूँद और सागर में; चित्र की एक रेखा और चित्र में; सूर्य की एक किरण और सूर्य में जो सम्बन्ध है; वही सम्बन्ध जीवात्मा और परमात्मा में है। दोनों प्रेम की डोर में बँधे हुए हैं और यह बन्धन प्राकृतिक है, कभी प्रथक नहीं हो सकता।”

चौथी बात जिसकी ओर संकेत किया जाता है वह यह है कि जब तक अंश (जीवात्मा) अपने पूर्ण (परमात्मा) की ओर आकृष्ट नहीं होता, परमात्मा जीव को अपनी ओर नहीं खींचता। इसी प्रकार जब तक जीवात्मा पर से इन्द्रिय, मन, बुद्धि, तथा आनन्द आदि के आवरण दूर नहीं होते तब तक परमात्मा का प्रेम जो स्वतः उसमें मौजूद है, प्रकट नहीं होता। और जब तक जीवात्मा का प्रेम प्रकट नहीं होता तब तक परमात्मा उसको अपनी ओर नहीं खींचता।”

“जिन तरीकों से मन, बुद्धि, आनन्द आदि के आवरण आत्मा के ऊपर से उतारे जाते हैं उन तरीकों का नाम तप, रियाज़त, साधन, अभ्यास आदि, आदि हैं। इन पदों के हटाने के बाद जीव को कुछ करना नहीं होता। परमात्मा की कृपा और प्रेम जीव को स्वयं अपनी ओर खींच लेते हैं। जीव को केवल

इन आवरणों को हटाना होता है। इसी लिए हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में और मुसलमानों के कुरान मजीद में लिखा है कि अगर बन्दा (बन्दगी करने वाला, भक्त) मेरी ओर एक कदम चलता है तो मैं (परमात्मा) बन्दे की ओर सौ कदम चलता हूँ।”

“इन आवरणों को हटाने के लिये अलग अलग साधन हैं। प्राणमय कोष को हटाने का साधन और है, अन्नमय कोष के हटाने का और। मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष को हटाने के भिन्न-भिन्न साधन हैं। यह साधन किसी अनुभवी महापुरुष से सीखने चाहिए। वह आवरण या कोष केवल मौखिक बातचीत से नहीं टूटते। इन्हें हटाने के लिये बड़ी चेष्टा और परिश्रम करना पड़ता है। जो लोग केवल पुस्तकें पढ़ कर या सुन कर, अपनी बुद्धि के बल पर इन्हें हटाना चाहते हैं, वे धोखे में हैं, और गलत रास्ते पर जा रहे हैं।”

इतना कह कर गुरुदेव मौन हो गये।

शिष्य ने निवेदन किया—“महाराज, मैं इस बात को अब भली भाँति समझ गया।”

गुरुदेव से आज्ञा लेकर वह अपनी कोठरी में चला गया।

— — —

अध्याय २

(ब)

आध्यात्म विद्या क्या है ?
सूफी या साध किसे कहते हैं
अन्तःकरण की शुद्धि ।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निबट कर शिष्य फिर गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुआ । सीस नवा कर वन्दना की और दीनता पूर्वक निवेदन किया :—

प्रश्न—तसव्वुफ़ यानी आध्यात्म विद्या क्या है ? सूफी या साध किसको कहते हैं ?

उत्तर—ब्रह्मविद्या, आध्यात्म-विद्या या तसव्वुफ़ एक ही विद्या के पृथक पृथक नाम हैं । यह वह विद्या है जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता है । सूफी या साध उसे कहते हैं जिसके अन्तःकरण की शुद्धि हो गई हो ।

प्रश्न—शुद्धि से आपका क्या आशय है ? इससे क्या लाभ है ।

उत्तर—इस जगत के अन्दर व्यवहार करते रहने से मनुष्य को आत्मा पर भिन्न भिन्न प्रकार की इच्छाओं के आवरण पड़ जाते

हैं। इन आवरणों के कारण असलियत छिप जाती है और अज्ञानता रूपी अन्धकार छा जाता है। इन्हीं आवरणों को "कोष" कहते हैं। यह आत्मा को ढँके रहते हैं और कई प्रकार के होते हैं। (१) अन्नमय कोष, (२) प्राणमय कोष (३) मनोमय कोष (४) विज्ञानमय कोष, और (५) आनन्दमय कोष। इन पर्दों को हटा देना ही सफाई या शुद्धि कहलाती है।

मनुष्य के दिल का वर्तन बुरे-भले, शुभ-अशुभ विचारों से भरा रहता है। इसमें दीन और दुनियाँ के सारे विचार, दुनियाँ का प्रभाव, खुदी (Ego) यानी अहंकार के विचार भर जाते हैं जिनके कारण वे आवरण काले और मोटे हो जाते हैं। उनमें से आत्मा का प्रकाश बाहर नहीं आता, अन्धकार ही अन्धकार छा जाता है जिसके कारण कोई वस्तु साफ़ नहीं दिखाई देती और दिखाई भी देती है तो कुछ की कुछ। जो असलियत है वह छिप जाती है, अज्ञानता पैदा हो जाती है। यही अज्ञानता सारी मुसीबतों की जड़ है। हर प्रकार की मुसीबत इस अज्ञानता से ही पैदा होती है। जिन्दगी तवाह हो जाती है और असली खुशी जाती रहती है। इस असली खुशी अर्थात् सच्चे आनन्द (Eternal Bliss) की खोज में अन्धकार में मनुष्य कभी एक वस्तु को पकड़ता है कभी दूसरी को जिससे उसकी मुसीबतें वजाय कम होने के और बढ़ जाती हैं। मनुष्य जीवनपर्यन्त उन मुसीबतों के दूर करने और सच्चे आनन्द को प्राप्त करने के लिये यत्न करता रहता है। दलदल में फँसे हुए आदमी की तरह जितना वह उन मुसीबतों से निकलना चाहता है, उल्टा उतना ही उसमें और फँसता जाता है। इस विवशता और दुख में वह मृत्यु को प्राप्त होता है।

मर जाने पर भी वह उस मुसीबत से नहीं छूटता। मरना तो विश्राम की एक दशा है। इसको और भली भाँति समझो। जैसे

कोई परेशान और मुसीबत में फँसा हुआ आदमी रात को सोते में स्वप्नों में भी उन्हीं विचारों में भटकता रहता है और रात भर परेशान रहता है, चैन और विश्राम नहीं पाता, जागने पर फिर वही मुसीबतें सामने आ जाती हैं; उसी तरह मृत्यु के बाद जब दुबारा जन्म होता है तो वही दुख और परेशानियाँ वर्तमान रहती हैं। इन सब को सदा सदा के लिये दिल से निकाल देना ही अन्तःकरण की शुद्धि कहलाती है।

इससे लाभ यह है कि जब अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा और उसके ऊपर की कालिख यानी अज्ञानता दूर हो जायेगी तब सच्चाई और असलियत सामने आयेगी, आत्मा का ज्ञान प्रकट होने लगेगा और उसके द्वारा हर वस्तु का ठीक ज्ञान हो जायेगा जिससे उसकी मुसीबत और क्लेश दूर हो जायेंगे। जिस प्रकार किसी कमरे में प्रकाश के न होने से अन्धकार हो जाता है, कोई वस्तु ठीक से दिखाई नहीं देती, मनुष्य किसी वस्तु की खोज में ठोकरें खाता है, अन्धों की तरह टटोलता फिरता है, कभी किसी वस्तु को पकड़ता है कभी किसी को, परन्तु सही तौर पर किसी वस्तु को नहीं पाता; हैरान, परेशान और दुखी हो जाता है। प्रकाश होते ही प्रत्येक वस्तु अपनी अपनी जगह रखी हुई साफ़ साफ़ दीखने लगती है, तब परेशानी दूर हो जाती है और शान्ति आ जाती है। दर्पण मैला हो और साथ साथ हिल भी रहा हो तो कोई कितना भी चाहे, उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब साफ़ दिखाई नहीं देगा। जब दर्पण साफ़ हो जाएगा, उसका हिलना बन्द हो जाएगा तब उसमें प्रतिबिम्ब साफ़ दिखाई देगा। इसी प्रकार दिल का दर्पण जब तक साफ़ नहीं होगा और उसकी चंचलता दूर न होगी तब तक असली ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और न शान्ति मिल सकती है। शान्ति के बिना मनुष्य को सच्चा सुख और सच्चा

आनन्द नहीं मिल सकता । अन्तःकरण की शुद्धि का यही ध्येय है और यही लाभ है ।

प्रश्न—महाराज, आपने एक ही प्रवचन में इतनी बातें बता दी कि मेरे मन की बेचैनी वजाय कम होने के और बढ़ गई ।

उत्तर—वत्स, मेरे कहने का तात्पर्य ही यह था कि तुम्हारे मन में और अधिक संशय और शंकाएँ पैदा हो जाये तथा उनको प्रकट करने में और उनके समझने में तुम्हारे दिल की धीरे धीरे सफाई होती जाए । गन्दे वर्तन और गन्दे हाथों को जिनमें मिट्टी लगी हो, साफ़ करने के लिये, और मिट्टी की जरूरत पड़ती है । जब उन्हें मिट्टी लगाकर रगड़ा जाता है तब मैल छूटने लगता है और जब पानी डाला जाता है तो गन्दा मैल वर्तन और हाथों से छूट जाता है । इसीलिये सत्संग में आकर भ्रम, शंका और संशय का पैदा होना आवश्यक है, तभी सफाई हो सकेगी । जिसके मन में शंका ही पैदा नहीं होती उसे पूर्ण विश्वास कैसे प्राप्त होगा ? जिसमें कोई अपवित्रता, गन्दगी या कालिख नहीं है उसे कोई क्या साफ़ करेगा ? जब बुखार अन्दर से बाहर आ जाता है तभी उसकी दवाई दी जाती है । तुम्हारे मन में जो शंकाएँ हैं निकालते चलो, उन्हें रगड़ दो और मैं अपने आध्यात्मिक अनुभवों का पानी उनके ऊपर डालता रहूँगा, तुम्हें समझाता रहूँगा । तुम्हारे मन के सारे मैल धुल जायेंगे । सारे संशयों और द्विविधाओं का समाधान हो जायेगा । आत्मा का असली ज्ञान प्रकाश में आने लगेगा । तुम सच्चे सूफ़ी या सन्त बन जाओगे ।”

शिष्य ने प्रश्न किया—“महाराज, जो प्रश्न मैंने पहले किया था वही एक बार फिर करता हूँ । मेरी धृष्टता को क्षमा कीजिए । मैं मूर्ख हूँ । आपके बताये हुये धर्म को भली प्रकार नहीं समझा । एक

बार फिर कृपा करके बताइये कि वास्तव में ब्रह्मविद्या का क्या अर्थ है और संत या सूफी किसको कहते हैं ?”

गुरुदेव ने प्रेम पूर्वक समझाया—“ब्रह्मविद्या दिल को साफ़ करने का साधन है। संत या सूफी उसे कहते हैं जिसके दिल की सफ़ाई हो गई हो।”

शिष्य ने आश्चर्य पूर्वक निवेदन किया—“महाराज, क्या आप का यह आशय है कि दिल के वर्तन को धर्म के ख्याल से भी खाली कर दिया जाय क्योंकि वह भ्रम या वहम है ? किन्तु मैं तो दीन अथवा धर्म को ही सब कुछ समझे बैठा हूँ और दीन (धर्म) को दुनिया का अभिमुख (जिद, opposite) मान रहा हूँ।”

गुरुदेव हँसे और एक शब्द पढ़ा :—

“जैसी दुनियाँ वैसा दीन, यह है आजिज़ वह मसकीन ।
दोनों छोड़ों बनो मतीन, तब तुम ज्ञात के होगे करीन ॥”

(भावार्थ— जैसी दुनिया है वैसा ही दीन है। यह मजबूर है और कमज़ोर है। इन दोनों से ऊपर उठो, ईश्वर को अपना मालिक समझो और दीन बनो, तब तुम ईश्वर के निकट हो जाओगे)

तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर स्वयं तुम्हारे ही शब्दों में छिपा हुआ है। तुम दीन को दुनियाँ का अभिमुख (opposite) बताते हो और दीन (धर्म) को दुनियाँ का दुश्मन ठहराते हो। जहाँ अभिमुख अथवा प्रतिकूल होने का ख्याल होगा वहाँ दुश्मनी का ख्याल क्यों रहेगा ? दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। सूफ़ियों में इसे लाज़िम-मलज़म कहते हैं। एक प्रतिकूल बात दूसरी

प्रतिकूल (opposite) वात का विरोध प्रकट करती है। जहाँ विरोध होगा वहाँ मित्रता का क्या काम और आनन्द तथा शान्ति कहाँ? दो वस्तुओं की रगड़ से तीसरी वस्तु पैदा होती है। यह तुम स्वयं समझते हो कि जिसको तुम दीन या धर्म सतझते हो वही तो विरोध की जड़ है। उसी से यह संसार प्रकट हुआ, दुनियाँ बनी। वह तुमको पक्षपाती, कट्टर, छोटे दिल का बनाता है और तुम्हारी धार्मिक दृष्टि को संकुचित करता है। इसी के कारण झगड़े पैदा होते हैं और वही वैचैनी तथा अशाँत का वास्तविक कारण बनते हैं। मुसलमान हिन्दुओं को अपना विरोधी समझते हैं, उनमें आपस में भी विरोध है, शिया सुन्नियों में झगड़ा है। क्या तुम इन बातों को नहीं समझते ?”

शिष्य—“महाराज, आप सत्य कहते हैं।”

गुरुदेव ने आगे कहा—“हजरत मौहम्मद साहब के जीवन काल में ही इस्लाम में लगभग ७२ फ़िरके हो गये थे और एक फ़िरका दूसरे का दुश्मन बन गया था। इसी कारण मैंने तुम्हारी विचारधारा को विशालता देने की दृष्टि से कहा था कि दीन से ही दुनियाँ का ज़हर है अथवा धर्म से ही संसार का प्राकट्य है। दीन न होता तो इस दुनियाँ के प्रकट होने का सामान कैसे और कहाँ से आता? थोड़ी सी देर ध्यान पूर्वक विचार करो तो तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि सारी खराबी की जड़ दीन में रहती है और दीन अथवा धर्म ही सारे विरोध और झगड़ों का कारण हुआ है दीनदार या धर्मपरायण होकर वास्तविकता और सच्चाई को समझने की आशा रखना मूर्खता है। धर्म तो परमात्मा या सच्चे मालिक को समझने और पहचानने में एक पर्दा बना हुआ है। सुन्नी हजरत अबूबक्र साहब सिद्दीकी के लिये शियों से उलझते हैं

और शिष्ये हज़रत अली के नाम पर लड़ते हैं। क्या ये लोग सचमुच अबूबक्र और अली के वन्दे हैं? यदि यह सच्चाई और वास्तविकता का समझने में त्रुटि करते हैं तो आश्चर्य की कौन सी बात है। यह लोग तो सच्चाई से कोसों दूर पड़े हुये हैं। इनमें ईश्वर कहाँ है? यह ईश्वर के रहस्य को कैसे समझ सकते हैं? धर्म ही वास्तव में भगड़ों और विवाद का कारण है। जब तक धर्म के इस बेकार भ्रम को दिल से नहीं निकाल दोगे तब तक यह सम्भव नहीं है कि तुम वास्तविकता के समीप आसको।”

शिष्य— “महाराज ने ठीक ही कहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दुनियाँ की खराबी का पता इस दीन अथवा धर्म में मिलता है।”

गुरुदेव— “यह प्राकृतिक तमाशे जो तुम्हें दृष्टि गोचर हो रहे हैं, यह दुनिया नहीं है। दुनियाँ और कुछ नहीं केवल धर्म के भगड़े वखेड़ों का ही नाम दुनियाँ है। यह पर्दा है, आवरण है। जिज्ञासु जब तक इससे अपने आप को नहीं हटायेगा उससे ईश्वर-भक्ति, सच्चाई तथा वास्तविकता की आशा करना बड़ी भूल है। तुम जितनी जल्दी सम्भव हो सके धर्म के इस भूठे भ्रम से ऊँचे उठ जाओ और अपने आपको पवित्र बना लो। जिस समय तुम इस अपवित्रता को अपने दिल से दूर कर दोगे, तुम्हारे दिल की सफ़ाई हो जाएगी और दिल की सफ़ाई हो जाने पर तुम सूफ़ी अर्थात् सन्त हो जाओगे।” “सूफ़ी” से यही मतलब होता है। सूफ़ी होकर तब आगे पग बढ़ाओ और सच्चाई के प्रेमी, (हकीकत पसन्द) बन जाओ।”

शिष्य एक धर्मपरायण मनुष्य था। सच्चा ईमानदार मुसलमान था। सच्चाई की खोज में मारा मारा फिरता हुआ भारत में आया और गुरुदेव की सेवा में गया। गुरुदेव आत्मदर्शी थे। देखते

ही उन्होंने जान लिया कि पात्र तो योग्य है किन्तु धार्मिक संकीर्णता के जाल में फँसा हुआ है और यह जाल आत्मा और सत्य की खोज के मार्ग में एक रोड़ा है। जब तक यह विचार दूर न होंगे सच्चाई का पता नहीं चल सकेगा। इसलिये उन्होंने आरम्भ से ही धर्म के प्रतिकूल वार्तालाप प्रारम्भ किया जिससे भ्रम और धृणा के विचार उसके हृदय से दूर हो जायें और असलियत तथा सच्चाई को जानने के लिये मार्ग सुगम हो जायें। अन्धविश्वास टूट जाय। आत्मज्ञान इन सबसे ऊँचा है। जब तक मनुष्य की सुरत मनमस्तिक में भरे हुये इन अन्ध विश्वासों से निकल कर आगे नहीं बढ़ेगी, वास्तविक सच्चाई के निकट नहीं पहुँच सकती। यह सब विचार चाहे दीन के हों या दुनियाँ के, धार्मिक हों या संसारी, अपने मन के विचार हैं। जो मनुष्य इन विचारों में फँसा हुआ है वह मन के स्थान पर है। असलियत और सच्चाई उससे कोसों दूर है। उसे जानने के लिये मन की भली-बुरी वासनाओं को समाप्त करना होगा। तब आत्मा मन के आवरण से मुक्त होगी। ऐसी ही आत्मा में जो सारे बन्धनों और मन की वासनाओं से मुक्त हो चुकी है परमात्मा का प्रेम जागृत होगा, वास्तविक सत्य अर्थात् परमेश्वर का, जिसे सूफ़ियों में जाते-हक्कीकी कहा है, ज्ञान होगा। आत्मा द्वारा ही, परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। जीवात्मा पर से जब तक मन, बुद्धि आदि के सारे आवरण (चाहे वे धर्म सम्बन्धी हों या जगत सम्बन्धी, दीन के हों या दुनियाँ के) नहीं हट जायेंगे, वह असलियत का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। उसको सिवाय एक परमात्मा के ख्याल के शेष सभी विचारों को अपने भीतर से निकाल देना है। तब असलियत का ज्ञान प्राप्त होगा। फारसी का एक शेर है :—

“तर्क दुनियां तर्क उक्रवा, तर्क मौला तर्क तर्क।”

(भावार्थ—दीन के ख्यालों का आसरा लेकर दुनियाँ के ख्याल

को छोड़ों, परमात्मा का आसरा लेकर दीन अथवा धर्म के ख्याल को छोड़ों, फिर परमात्मा के ख्याल को छोड़ों और अन्त में छोड़ने के ख्याल को भी छोड़ों ।)

अज्ञानी लोग भगवान बुद्ध को नास्तिक बताते हैं । कहते हैं कि वे परमात्मा को नहीं मानते थे । वास्तव में बुद्ध भगवान ही असलियत के जानने वाले और सच्चे त्यागी थे ।

— — —

ॐ

अध्याय ३

दिल की सफ़ाई । गुरु की आवश्यकता ।

अगले दिन शिष्य फिर गुरुदेव दरवार में उपस्थित हुआ । गुरु कृपा से दिन प्रतिदिन उसकी श्रद्धा और विश्वास बढ़ते जाते थे । उसने प्रेम पूर्वक सीस नवाकर गुरुदेव के चरण कमलों की पावन रज अपने माथे पर लगाई और आज्ञा लेकर एक ओर बैठ गया ।

गुरुदेव ने कहा—“वत्स, तुम्हारे दिल की सफ़ाई अभी नहीं हुई । जो कुछ पूछना चाहते हो, निर्भय होकर पूछो ।”

शिष्य ने नम्रता पूर्वक प्रश्न किया—“प्रभू, मनुष्य जिस देश में, जिस जाति में, जिस समाज में, और जिस तरह के माता-पिता के घर जन्म लेता है, उसके प्रभाव उसमें स्वतः मौजूद होते हैं । उनसे बचना बहुत कठिन है । क्या इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ? ”

उत्तर—“यह तो सत्य है, किन्तु इन विचारों को अपने दिल से निकाल देना ही तो दिल की सफ़ाई करना है, यही तसव्वुफ़ कहलाता है । जब वर्तन में एक चीज़ भरी हुई है तो उसमें दूसरी चीज़ कैसे भरी जा सकती है । जब वर्तन खाली हो जायेगा तभी

उसमें उससे अच्छी चीज़ रखी जा सकती है। साथ ही साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि वर्तन को केवल खाली ही न किया जाय, किन्तु उसको अच्छी तरह साफ भी कर लिया जाय। यदि अच्छी तरह सफाई न होगी तो दूसरी चीज़ जो उसमें रखी जाएगी वह भी गन्दी हो जायगी और उसमें मैल लग जायगा। ब्रह्मविद्या यह तो नहीं कहती कि अपने देश, जाति, समाज और माता पिता को छोड़ दो। ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, आवश्यकता इस बात की अवश्य है कि अपने दिल को धीरे धीरे साफ़ करते चलो और उसे शुद्ध बनाते चलो। दिल में जो अनुचित विचार भर गये हैं उनको निकालते चलो और उसे सद्विचारों से भर दो। दिल के बनाने तथा उसकी सफाई का नाम ही तसव्वुफ़ अथवा ब्रह्मविद्या है। इसके सिवाय और कुछ नहीं।”

प्रश्न—“बुरे विचारों को निकाल कर उसमें अच्छे विचार किस तरह भरे जायें ?”

उत्तर—“पहले किसी ऐसे महापुरुष का सत्संग करो जो पूर्ण धनी हो, कामिल हो। पूर्णधनी और कामिल वह है जिसने अपने मन, इंद्रियों आदि को जीत लिया है, आत्मसाक्षात्कार कर लिया है और जिसकी स्थिति आत्मा में है। इसी व्यक्ति को पीर यानी गुरु कहते हैं। उसके साथ रहने और सत्संग लाभ करने का नाम ही गुरु पूजा (पीर-परस्ती) है। यदि सौभाग्य से ऐसा महापुरुष मिले तो उसके पास दीनता पूर्वक जाओ और उसकी थोड़ी सी भी संगीत को ईश्वर कृपा समझो। छेड़ छाड़ न करो, विनम्र होकर बैठो, उसकी बातों को ध्यान पूर्वक सुन कर उन पर मनन करो। तुम देखोगे कि दिल धीरे धीरे स्वयं उन्नति करने लगेगा।”

सन्त अथवा गुरु की पहिचान कठिन है, किन्तु यदि वास्तव में किसी को परामार्थ की सच्ची चाह है तो केवल गुरु की बातें सुनते रहने से, और उनका सत्संग लाभ करने से मन नित्य-प्रति सद्विचारों से भरता जायेगा, आनन्द और मस्ती आ जायगी। गुरु की संगति में प्रकाश मिलेगा, अपनी त्रुटियों का आभास होगा और अपनी कमजोरियों पर दृष्टि जायगी। धीरे धीरे कुछ दिनों के सत्संग से आत्मा को शान्ति और आनन्द मिलेगा। जैसे, गर्मी के दिनों में कड़ी धूप से मारे हुए आदमी को वृक्ष की छाया में शीतलता और शान्ति मिलती है, इसी प्रकार संसार के थपेड़ों से भुलसे हुए मन को गुरु चरणों में बैठकर सत्संग लाभ करने से अनुपम शीतलता और शान्ति का अनुभव होता है। आरम्भ में यह बातें अपने आप में काफी हैं। ऐसे महापुरुषों के वचनों में प्रभाव होगा क्योंकि वे स्वयं परमार्थ की कमाई किये हुए हैं। जिन्होंने कमाई नहीं की है, केवल पुस्तक ज्ञान या सुनी सुनाई बातों से सम्बन्ध रखते हैं वे खोखले हैं, उनके वचन प्रभावकारी नहीं होते और यदि थोड़ा बहुत प्रभाव हुआ भी तो वह स्थायी नहीं रहता। गुरु के लिये वह आवश्यक है कि वह पोथी पूजने वाला न हो बल्कि उसका ज्ञान पोथियों से ऊँचा हो। ऐसे महापुरुष के विषय में किसी ने कहा है :—

“राज दिल का जब सुनायेगा कभी,
रू ह सूए अर्श जायेगी तभी ।
जो कोई देखे हक़ का नज्जारा,
करे किताबों को पारा पारा ।”

(भावार्थ —जब वह अपने दिल का ज्ञान सुनायेगा अर्थात् अन्तःकरण को शुद्ध करने की बात कहेगा, तब उसको (शिष्य को)

ईश्वरीय आनन्द प्राप्त होगा। जो कोई चाहता है कि ईश्वर का दर्शन करूँ तो वह किताबों को अलग रखकर पहले अभ्यास करे जिससे अन्तःकरण की सफाई हो।)

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय,
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।
पढ़ पढ़ पर पत्थर भये, लिख लिख भये जो ईंट,
कवीर मन में प्रेम की, लागी नाही छींट।”

प्रश्न—“भगवन, पुस्तकों के अध्ययन से विद्या एवं ज्ञान अथवा जानकारी काफ़ी बढ़ जाती है। जानकर मनुष्य यदि चाहे तो इनसे संकेत लेकर आन्तरिक अभ्यास और अन्तर की कमाई करने लग जाए। क्या उससे लाभ नहीं होगा?”

उत्तर—“पढ़ना लिखना सहज है। बाहर की प्रत्यक्ष विद्या का पढ़कर मनुष्य अपना ज्ञान अवश्य बढ़ा सकता है किन्तु जहाँ अभ्यास का प्रश्न है वहाँ किसी अनुभवी अभ्यासी (आमिल) से सीखना पड़ेगा। जब बढ़ई तक का काम किताब पढ़ने से नहीं आता और किसी जानकार बढ़ई की सेवा में रहकर सीखना पड़ता है तो ब्रह्मविद्या जो आन्तरिक विद्या है, उसका अभ्यास तो और भी कठिन है।”

“आध्यात्म विद्या को सूफ़ियों में इल्म लुदनी कहते हैं जिसका शब्दार्थ है आन्तरिक ज्ञान। इसका सम्बन्ध पुस्तकों से नहीं है। यह इल्म-सीना अर्थात् आन्तरिक विद्या है। इसे इल्म-सफ़ीना अर्थात् पोथी विद्या समझना बड़ी भूल है। यह विद्या दुनियां में सीना-ब-सीना, एक हृदय से दूसरे हृदय में आई है और एक से

सुनकर, जानकर तथा देखकर दूसरा पूर्ण अभ्यासी (आमिल) बन सकता है। यह बात पोथियों में कहा है ? वह तो निर्जीव वस्तु हैं। निर्जीव वस्तु ने कब किसी जीवधारी को वास्तविक विद्या सिखाई है ? वह तो स्वयं इस बात की मोहताज हैं कि कोई मनुष्य उन्हें पढ़े, उनकी व्याख्या करे और समझाये। और जब यह हालत है तो फिर क्यों न किसी जीवित व्यक्ति से ही इस विद्या को प्राप्त किया जाय। पुस्तक पढ़ कर केवल काल्पनिक विश्वास का ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिसे सूफी इल्मुल यक्रीन कहते हैं। ऐनुल यक्रीन अर्थात् वास्तविक और पूर्ण विश्वास की स्थिति किसी सन्त-सद्गुरु अथवा आत्मज्ञानी महापुरुष की संगति से प्राप्त हो सकती है। और जब मनुष्य उसकी संगति का और कृपा का लाभ उठाकर अपने अन्तर में कमाई करने लगता है तो वह स्वयं भी वैसा ही बनने लगता है और उसे परमात्म-रूप हो जाने का विश्वास प्राप्त होता है और वह इस सर्वोच्च स्थिति में आ जाता है जिसको सूफियों में हक्कुल-यक्रीन (स्वयं अनुभव किया हुआ) कहते हैं।”

प्रश्न—“भगवन, इस विषय को और खुल कर समझाने की कृपा कीजिए।”

उत्तर—“सुनो। तुमने पुस्तकों में पढ़ कर भारत देश और फिर उसमें भी बनारस का ज्ञान प्राप्त किया। यह काल्पनिक विश्वास हुआ। बनारस की कम्पना तुम्हारे मन मस्तिष्क में आई। यह पहला विश्वास हुआ जिसे तुम्हारे देश में इल्मुल-यक्रीन कहते हैं। जब तुम अपने देश से यात्रा करके भारत आये और बनारस पहुंचे और उसे अपनी आँखों से स्वयं देख लिया और उसकी सत्यता पर विश्वास आ गया; यह व्यवहारिक-ज्ञान हुआ। वास्तव में तुम्हें विश्वास हो गया कि भारत देश और बनारस भी कोई वस्तु है।

इस प्रकार के विश्वास हो जाने को तुम्हारे देश में हक्कुल यकीन कहते हैं। हक माने सच्चाई और यकीन मानें विश्वास।

उसके पश्चात् बनारस में तुम मुझ से मिले। मान लो मैं बनारस की जान हूँ, यहीं जन्म लिया, यहीं मेरा पालन पोषण हुआ और यहीं रहता हूँ और यहाँ के हाल और कोने कोने से पूरी तरह परिचित हूँ। मैंने तुम्हें साथ लेकर बनारस का भ्रमण कराया। तुम्हें अन्य स्थानों के अलावा ऐसी ऐसी जगहें भी दिखलाई जिनका पुस्तकों में उल्लेख तक न था। बनारस का चित्र पूरी तरह तुम्हारे हृदय पटल पर खिच गया। इतना होने पर तुम भी मेरी तरह पूरे बनारसी हो जाओगे। गुरु-कृपा द्वारा तुम्हारा यह विश्वास परमात्म-रूप हो जाने वाला विश्वास होगा जिसको तुम्हारे देश में ऐनुल-यकीन कहते हैं। यदि तुम यहाँ न आते, मुझ से न मिलते और यहाँ की वस्तुओं को न देखते, केवल पुस्तकें पढ़ कर ही अपने सन्तोष को सीमित कर लेते तो यह बात तुमको कैसे नसीब होती? इसी कारण यदि मनुष्य कितना भी जानकार हो उसे आध्यात्म के विषय में सदा गुरु की सहायता की आवश्यकता है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है कि जो इसके प्रतिकूल चलते हैं, दुखी और परेशान होते हैं। पुस्तकों के लाभ तथा उनसे उत्पन्न अनुचित भ्रम को अपने मन से दूर करो। कुछ दिन गुरु के सत्संग में बैठो, तब तुम्हें वास्तविकता का पता लग जायगा, अन्यथा भूल में पड़ कर अपनी आयु व्यर्थ खो दोगे और हाथ कुछ नहीं आयेगा। किसी ने कहा है :—

गर सफ़र करने की ख्वाहिश है तुम्हें,
हादिये-रह को जरूरत भी तो है -
नुक्ता ये इरफान का दिल से जान ले,
खिजिर सीरत भी हो गर ये जान ले।

है अगर मंज़ूर दीदारे खुदा,
सौहवते मदें खुदा से दिल लगा ।

एक लहमा हमनशीनी पीर की,
वहतर अज़ सदसाल ताअत समभो जी ।

पीर फ़रज़िन्दे खुदा हैं बेगुमा,
हाज़िर और गायब खुदा में हैं निहाँ ।

(भावार्थ ऐ जिज्ञासु) यदि तुझे परमार्थ पथ पर चलने की इच्छा है तो ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो उस रास्ते से पूरी तरह परीक्षित हो । यह ब्रह्मविद्या का गुरु है । अगर तेरी आदत पैगम्बर ख़िज़्र की सी भी हो तो भी इस बात को मान ले कि इस में पथ प्रदर्शक की आवश्यकता है । अगर तुझे ईश्वर के दर्शन की इच्छा है तो ईश्वर के प्रेमियों से प्रेम कर । सद्गुरु की एक क्षण की संगति का प्रभाव सौ वर्ष की तपस्या से कहीं अधिक है । गुरु परमात्मा का रूप है, वह हर समय ईश्वर में लय रहते हैं ।)

अध्याय ४

गुरु-भक्ति का भेद और पांच प्रश्न ।

अगले दिन शिष्य का पहला प्रश्न था—“गुरु भक्ति (पीर-परस्ती) का असली भेद क्या है ?”

उत्तर—गुरु से शिष्य को ब्रह्मविद्य का बीज मिलता है । जब उसकी बीज रूप शक्ति शिष्य में प्रवेश कर जाती है तो वह स्वयं गुरु-रूप ही हो जाता है । आटे में एक चुटकी खमीर डाल दो तो सब आटा खमीर हो जायगा । गरम दूध में थोड़े से दही का जामन दे दो, सारा दूध वगैर महनत के स्वयं दही के रूप में परिणित हो जायगा क्योंकि दही ने दही होने की कमाई पहले से कर रखी है । जलते हुए दीपक से ही बुझा हुआ दीप जलाया जाता है । जगा हुआ मनुष्य ही सोते हुए मनुष्य को जगा सकता है । तैराक ही डूबते हुए को पानी के बाहर निकाल सकता है । दूसरों से यह सम्भव नहीं है । क्या तुम नहीं देखते कि विद्वान मनुष्य प्रभाव शून्य होते हैं । जहाँ अभ्यास और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का प्रश्न आता है, परीक्षा के समय वह मुँह के बल गिरते हैं क्योंकि उनमें कमाई नहीं होती । कमाई का हिस्सा किसी कमाई किये हुए से ही मिलता है, अन्य से नहीं । यह सच्ची और सही सही बातें हैं । यदि ऐसे महापुरुष से शक्ति ली जाये जो

आत्मज्ञानी हो तो वास्तविक फ़ायदा होगा, अन्यथा नहीं। इस शक्ति के विभिन्न नाम हैं। सूफ़ियों में इसे “फ़ैज़” के नाम से पुकारते हैं। सिक्खों में इसे “अमृत” का नाम दिया है। वही अमी-रस है। वास्तव में यह गुरु का दान है जो वह शिष्य को अपनी कमाई में से देता है। शिष्य के लिये यही अनमोल भिक्षा है और भिक्षा तब मिलती मिलती है जब दीनता और भक्ति पूर्वक याचक बन कर जाय और :— द्वार धनी के पड़ रहै, धका धनी का खाय, तब किसी क्षण गुरु कृपा करेंगे और अमृत यानी फ़ैज़ वख़ेंगे।”

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया—“ख़मीर का भेद तो मैं समझ गया किन्तु इस विषय में कई प्रश्न और पैदा हो गये। कृपा करके उनको भी समझा दीजिये।”

गुरुदेव बोले— तुम्हें सब प्रकार के प्रश्न करने की स्वतन्त्रता है। बुरा, भला, जो मन में आवे उसे बाहर निकाल दो। एक भी विचार शेष न रह जाय। संगति का लाभ इसी में है।”

शिष्य— “भगवन, मेरे पाँच प्रश्न हैं।

- (१) एक समय में एक ही गुरु करना चाहिये या एक से अधिक ?
- (२) एक समय में एक ही गुरु आध्यात्मिक शिक्षा के लिये जन्म लेता है या दो चार ?
- (३) जिसने एक गुरु से दीक्षा ली हो उसे दूसरे गुरुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

- (४) जिस गुरु से दीक्षा ली गई है यदि वह निर्वाण को प्राप्त हो जाय अर्थात् शरीर त्याग दे तो शिष्य को किसी दूसरे गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये या नहीं ?
- (५) यदि अपने गुरु से तसल्ली न हो तो क्या करना चाहिए ?

गुरु मुस्कराये "एक प्रश्न में पाँच उप-प्रश्न ? बहुत अच्छा । कोई हर्ज नहीं । अब ध्यान पूर्वक एक एक का उत्तर सुनते चलो ।

(१) तुम्हारा पहला प्रश्न है कि एक समय में एक ही गुरु करना चाहिये या एक से अधिक । एक समय में एक ही गुरु करना चाहिये । एक ही की शरण लेना उचित होता है अन्यथा (वहदत) एक का ख्याल पैदा नहीं हो सकता । दुनियां में चाहे कितने ही गुरु क्यों न हों, परन्तु सत्संग, सेवा और उनकी कृपा की धार का लाभ एक ही से लेना चाहिये । हाँ, यह शर्त अवश्य है कि बिना समझे बूझे किसी को हाथ नहीं देना चाहिये । यहां हजारों ही गुरु बने हुए हैं । कौन जाने किस आशय से आध्यात्मिक स्वाँग रच रखा है । यह तो अवश्य ही देख लेना चाहिए कि:—

क्या वह ईमानदारी और धर्म की (हक-हलाल) की रोटी कमा कर खाता है और उसो पर अपना निर्वाह करता है या नहीं ?

उसने गुरुआई को पेट भरने का साधन तो नहीं बना रखा है ?

उसके विचार कैसे हैं? चारित्रिक दशा (इखलाकी हालत) कैसी है?

वह मान बड़ाई का भूखा तो नहीं है?

क्या वह दूसरे गुरुओं की बुराई तो नहीं करता?

उसके सत्संग में बैठने से मन एकाग्र होता है या नहीं; शान्ति आती है या नहीं?

जब पूरी तसल्ली हो जाय तो उससे सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिए और उसी को अपना इष्ट एवं आदर्श बना कर उसका सहारा लेकर परमार्थ की कमाई में लग जाना चाहिए। दुनियाँ में धर्म-सम्बन्धी विषयों में एक ही गुरु का ध्यान रखना चाहिए जिससे उससे स्नेह और प्रेम होकर ज्ञान प्राप्त कर सके। ज्ञान उपार्जन करने बाद ऐकेश्वरवादी (वहदत परस्त), हो जाय, उपराम (इस्तगना), लय (फना) और पुनर्जीवन (वक्रा) प्राप्त कर सके। स्त्री का जब एक ही पति होगा तभी उसे सुख और आनन्द प्राप्त होगा। एक देश का जब एक ही राजा होगा तभी शान्ति मिलेगी, अन्यथा खराबी और बर्बादी होगी।

(२) तुम्हारा दूसरा प्रश्न है कि क्या एक समय में एक ही आध्यात्मिक गुरु शिक्षा के लिये जन्म लेता है या दो चार?

इस प्रश्न को अच्छी तरह समझो। जितने भी ब्रह्माण्ड हैं उन सबका एक एक ईश्वर है जो अपने अपने ब्रह्माण्ड का मालिक है। और जो सारे ब्रह्माण्डों का मालिक है उसको परमेश्वर (परम-

ईश्वर) कहते हैं। मुसलमानों में, खास कर सूफियों में, उसे खुदाये-अज़ीम कहते हैं। सन्तों की भाषा में उसे दयालपुरुष के नाम से पुकारा है। आदि में अल्लाह या परमेश्वर से दो धारें निकलीं। सूफियों में इनका नाम पड़ा शैतान और रहमान। सन्तों के यहाँ वही काल और दयाल के नाम से पुकारी गईं। हिन्दुओं में इन्हीं धारों को प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शिव आदि नामों से पुकारा गया।

शैतान यानी काल की शक्ति द्वारा माया अर्थात् दुनियां रची गई। जितने ब्रह्माण्ड, सूर्य-मण्डल, चाँद, सितारे, आदि दिखाई देते हैं, यह सब काल के द्वारा रचे गये हैं और काल के ही अधीन हैं। जितने अवतार कच्छ, मच्छ, वाराह, राम, कृष्ण आदि हुए व सब काल के ही अवतार थे। भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न शक्तियां लेकर आये, अपना काम पूरा किया और फिर काल में ही वापिस समा गये। दुनियाँ में जितनी ज्यादा खराबी होती है उसको ठीक करने के लिए उतनी ही अधिक शक्ति अवतरित होती है। इसी नियम के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न अवतार भिन्न-भिन्न कलायें लेकर उतरे। भगवान राम बारह कला के अवतार थे। भगवान कृष्ण सोलह कला के अवतार थे। अधर्मी और पापियों के विनाश के लिए उन्होंने शस्त्र उठाये, धर्म की स्थापना की और फिर वापिस अपने धाम को चले गये। काल अपनी दुनियाँ को विनाश नहीं होने देता, उसे कायम रखता है। मोक्ष देना या दयाल पुरुष के साथ जीव का मेला कराना काल का काम नहीं है। अगर वह ऐसा करे तो उसकी दुनियां उजड़ जाय। जीवन मरण का चक्र चलता रहता है।

परमेश्वर की दूसरी धार जिसे रहमान या दयाल कहा गया है, वह दुनियाँ के उन लोगों के उद्धार के लिये है जो अपने आप को जीवन-मरण के चक्र से छुड़ाना चाहते हैं, यहाँ के भंभटों और दुखों से ऊब गये हैं और हभेशा की शान्ति और आनन्द की जिनको सच्ची चाह है। सन्त दयालपुरुष के निज पुत्र हैं। रहमान की रहमत और दयाल की दयालुता उन्हीं में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। उनकी बैठक दशम द्वार पर होती है। अन्दर से वे दयालपुरुष के चरणों में लीन रहते हैं और शरीर से वे दुनियाँ के काम करते हैं। जीवों को दुनियाँ और उसके सामान की नाशवानता का ज्ञान कराते हैं। भूले-भटकों को चेताते हैं, दीन-दुखियों को शान्ति का सन्देश देते हैं, परमात्मा के प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। सच्चाई, नेकी और भक्ति के रास्ते पर चला कर एक दिन उन्हें दयालपुरुष के चरणों तक पहुंचा देते हैं जहाँ पहुंच कर दुनियाँ में फिर आना नहीं होता। जीवन मरण के चक्र से मनुष्य छूट जाता है।

जो असली गुरु है और सब का एक ही है वह तो परमात्मा ही है। लेकिन दुनियाँ के लोगों को चेताने और उनका कल्याण करने के लिये वह अपनी शक्ति अपने निज-पुत्रों के रूप में भेजता है जिन्हें गुरु, सद्गुरु, सन्त, ऋषि, औलिया आदि नामों से पुकारते हैं। एक समय में एक गुरु भाँ पैदा हो सकता है और अनेक भी। गुरु का पैदा होना समय का प्रश्न है। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है वहाँ उसी प्रकार वह पूरी की जाती है। एक मनुष्य अकेला सारे संसार में काम नहीं कर सकता। सारे मनुष्य एक स विचारों और भावनाओं के नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम, विश्वास और सहानुभूति भी एक के साथ नहीं हो सकती। गुरु या सन्त लोग प्रेम को लेकर चलते हैं। प्रेम के द्वारा ही वे शिक्षा देते हैं। प्रेम में ऐसा

आकर्षण है कि कैसा ही निष्ठुर-हृदय मनुष्य क्यों न हो, पिघल जाता है। अवतारों की भाँति गुरु लोग अस्त्रों का प्रयोग नहीं करते। किसी को सजा नहीं देते। यदि कोई प्रेम से राहे रास्ते पर आ जाय तो ठीक है, अन्यथा उसको दण्ड नहीं देते, उसके लिए दुआ करते हैं।

एक संस्था में एक समय में एक ही गुरु होता है, किन्तु उसके अनेक शिष्य हो सकते हैं जो दूर दूर देशों में जाकर उस एक गुरु की आज्ञानुसार उसी के उसूलों पर चल कर आध्यात्म-विद्या की शिक्षा देते हैं, उसका प्रचार एवं प्रसार करते हैं। उन सब में खमीर और प्रभाव तो एक का ही होता है किन्तु पात्र अलग-अलग होते हैं, उनकी योग्यतायें भी अलग अलग होती हैं। जो उनसे स्नेह करते हैं, उनपर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें वे अपनी योग्यता के अनुसार चेताते रहते हैं। उनका भी काम बनता रहता है और दूसरों का भी। जो उनकी ओर भुक्तते हैं वे परमार्थी कमाई में लग जाते हैं।

किसी किसी सम्प्रदाय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिन महापुरुष से उनके यहां का सिलसिला आरम्भ हुआ और आगे को चला वे ही आदि गुरु थे। उनसे पहले कोई सच्चा गुरु दयाल पुरुष या परमेश्वर के चरणों में पहुँचाने वाला नहीं हुआ। मालिक के धाम का असली भेद उन्हीं को पहले पहल मालूम हुआ और उन्होंने उस भेद को आगे के लोगों को बताया। इस बात की पुष्टि के लिये वे लोग अनेक दलीलें पेश करते हैं। यदि उसी संस्था की दृष्टि से देखा जाय तो यह बात ठीक हो सकती है क्योंकि उस सम्प्रदाय में विश्वास रखने वालों और वहाँ के तरीकों में ईमान लाने वालों के लिये उस संस्था के सर्वप्रथम महापुरुष ही आदि गुरु

ग्रहण कर ली हो उसको दूसरे गुरुओं के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये । जिसने एक गुरु से दीक्षा ले ली है उसे दूसरा गुरु करने और उससे लाभ उठाने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु यदि दूसरे गुरु के संतसंग में जाना पड़े अथवा वे उसके पास आवें तो आदर और प्रेम से पेश आवे । आदर और प्रेम मनुष्य के चरित्र के लिये उत्तम श्रेणी की चीजें हैं । ब्रह्मविद्या का ही नाम इल्मे-अदव और इल्मे-इखलाक है इसका आशय यह है कि दूसरों का आदर करना और अपना चरित्रगठन करना जो ब्रह्मविद्या ही सिखाती है । जिसका चरित्र स्वच्छ नहीं है और जिसके मन में ईर्ष्या तथा डाह भरा हुआ है उससे किसी को ब्रह्मविद्या की शिक्षा नहीं मिल सकती तथा वह स्वयं भी ब्रह्मविद्या का ऊंचा अधिकारी नहीं बन सकता ।

(४) चौथा प्रश्न जो तुमने किया है वह यह है कि गुरु शरीर त्याग दे तब क्या शिष्य को दूसरा गुरु करना चाहिये ? यदि किसी के गुरु ने शरीर छोड़ दिया है और उसने अभी तक पूर्णलय (मुकम्मिल फ़नाइयत) की अवस्था प्राप्त नहीं की है, और उसको मरा हुआ समझ रखा है, तो समझ लेना चाहिये कि वास्तविक मायनों में उसने दीक्षा ली ही नहीं । उसे अवश्य दूसरा गुरु करना चाहिये अन्यथा काम नहीं बनेगा । उसे शिष्य कहने कौन लगा ? शिष्य कहते हैं मुरीद को और मुरीद नाम है मुर्द का । शिष्य तो वह है जिसने गुरु में लय होने का पद प्राप्त कर लिया हो अर्थात् पूर्ण रूप से गुरु में लय हो गया हो । जिसमें अपने शरीर का ज्ञान तथा अहंभाव अभी तक वर्तमान हैं उसको दूसरे गुरु से अवश्य दीक्षा लेनी चासिये । हाँ, यह अवश्य है कि उसको गुरुमुख की पदवी प्राप्त नहीं होगी क्योंकि उस में एकता और एक गुरु वहदानियत) का विचार कठिनता से पैदा होगा और

अनेकता (कसरत पसन्दी) का प्रभाव बहुत दिनों तक शेष रहेगा ।

(५) तुम्हारा पाँचवाँ प्रश्न है कि यदि अपने गुरु से तसल्ली न हो तो क्या करना चाहिये ? यदि किसी को गुरु कृपा का लाभ उठाने का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ है और गुरु से विछुड़ गया है या गुरु करने में धोखा हुआ है या गुरु करने के बाद इस बात का पता नहीं चलता कि वे कहाँ हैं, या वे बहुत वृद्ध और बीमार हैं और प्रभाव नहीं पैदा कर सकते, या गुरु से अविश्वास हो गया है तो उसे भी दूसरा गुरु कर लेना चाहिये । यदि गुरु मौजूद हैं तो उनसे अपनी सारी हालत बता दे और यदि उन्होंने ध्यान न दिया हो या ध्यान तो देते हों किन्तु लाभ न होता हो और हालत न सुधरती हो तो उनसे अनुमति लेकर दूसरे गुरु से लगाव और प्रेम पैदा करे । ऐसी दशा में गुरु लोग दूसरे के पास भेज देते हैं या दूसरे के पास जाने की अनुमति दे देते हैं । यदि अनुमति न द तो फिर चिन्ता न करें ।”

शिष्य—“प्रभु, आपने जो बातें समझाईं उनसे मुझे पूरा सन्तोष हो गया । अब इस विषय में मेरे मन में कोई शंका शेष नहीं रही । खामीर का विषय ठीक है । विना जामन के दूध से दही नहीं बन सकता । इसी प्रकार विना गुरु का खामीरी असर लिये ब्रह्मविद्या का रंग नहीं चढ़ सकता । अर्थात् गुरु से ब्रह्मविद्या का बीज लिये बिना शिष्य में ब्रह्मविद्या का वृक्ष पल्लवित और पुष्पित नहीं हो सकता । गुरु धारण करना, उनका सत्संग करना, उनके वचनों के अनुसार अपने जीवन को ढालना भी बहुत आवश्यक है । इसके अलावा कोई और बात भी शेष रह गई जिसको श्री महाराज ने नहीं कहा या मैंने व्यान नहीं दिया । वह बात यह है कि गुरु-भक्ति पर इतना बल क्यों दिया गया है ?”

गुरुदेव — “तुम्हारा कहना ठीक है। मैंने तुम्हें इस विषय को साफ़-साफ़ खोल कर नहीं कहा, किन्तु तुमने उसे भुलाया नहीं।”

शिष्य—“प्रभु, फिर उसे भी समझा दीजिए।”

गुरु—“मनुष्य का हृदय बहुत चंचल है जैसे पारा। एक क्षण के लिये भी शान्त होकर नहीं बैठता। न उसे आराम है, न शान्ति और न चैन। अशान्ति, चंचलता बेचैनी और बेकरारी मुसीबत हैं। गुरु का निरन्तर ध्यान ही इस रोग की औषधि है। दिल रूपी बन्दर को जब तक मजबूती के साथ गुरु-ध्यान रूपी खूँटे से न बाँधोगे, यह कूदता ही रहेगा। इसे खूँटे से बाँधने पर भी गुरु-गुरु में यह अपनी उछल कूद नहीं छोड़ेगा। यह अवश्य है कि थोड़े दिनों में इसी अभ्यास से छलाँग मारने योग्य नहीं रहेगा। और जब यह कूदना फाँदना और लम्बे डग भरना बन्द कर देगा। तो फिर धीरे-धीरे चुप चाप बैठने लगेगा और उसको शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होने लगेगा। उसका चसका पाकर वह ठहरने लगेगा, और जब ठहरने लगेगा तब अपने अन्तर में घुसने लगेगा और असली काम बनाने लगेगा अर्थात् अपने भीतर असलियत का ज्ञान प्राप्त करने लगेगा। सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सत् से प्रेम और असत् से विमुख होने लगेगा।”

प्रश्न—“यह पहले इतना चंचल क्यों रहता था?”

उत्तर—“पहले इसका सम्बन्ध, लगाव एवं प्रेम अनेकों वस्तुओं से था। स्वभाव के कारण उसका ध्यान सब तरफ़ जाता था इसलिये परेशान और दुखी रहता था। स्त्री, संतान, अफ़सर,

मातहत, रुपया, धन, मान, मर्यादा, रूप, ऐश्वर्य, विद्या एवं गुण आदि, सब ही तो इसकी जान के पीछे पड़े रहते थे और सभी की ओर इसका ध्यान जाता था। अब सब से हट कर केवल एक का ध्यान रहता है, उसी एक की धुन है और उस केन्द्र का नाम "गुरु" है। अनेकों वस्तुओं और रंग-रूपों से उसका मनोरंजन अब नहीं होता, उनमें आनन्द जाता रहा। अब केवल एक गुरु-रूप से ही लगन लग कर रह गई है। अनेकों वस्तुओं से मनबहलाव के कारण उसमें बेचैनी थी, अब केवल एक गुरु-रूप से लगन लगी है। जब वह उस गुरु की आकृति के भीतर प्रवेश करता जायगा तो स्वतः-वाहरी आकृति की सीमा से परे निराकार आत्मा का दर्शन करने लगेगा। उस आत्म-दर्शन में शान्ति, तृप्ति और आनन्द ही आनन्द है। यहाँ पर समस्त बाह्य एवं आन्तरिक, प्रकट एवं गुप्त, इच्छायें एवं भावनायें, मिट जाते हैं। यह गोपनीय रहस्य है। निराकार में शान्ति है क्योंकि वहाँ पहुँच कर सांसारिक पदार्थ विलीन हो जाते हैं, अन्तःकरण में इच्छाओं एवं भावनाओं की हिलोरें शान्त हो जाती हैं और कोई वस्तु आत्मा के ज्ञान में बाधक नहीं शेष रहती।"

प्रश्न—“प्रभु, यह तो मैं समझ गया, किन्तु एक शंका पैदा हो गई है, उसका निवारण करने की कृपा करें। विचारों को बनाने वाला और हवा में किले खड़े करने वाला तो यह दिल ही था। देखने में तो दिल के नक्शे और विचारों का ताँता गायब मालूम होगा, किन्तु, वे भीतर भीतर दबे दबे सुलगते रहेंगे और वर्तमान रहेंगे।”

उत्तर—“यह ठीक है। नक्शों का खींचने वाला और विचारों का बनाने वाला यह स्वयं ही था। परन्तु अब धीरे धीरे

यह स्थिति बन गई है कि यह समझने लगा है कि इन विचारों और नक्शों का बनाने वाला स्वयं मैं ही हूँ। यह इच्छायें, यह विचार यह वासनायें मेरे ही आधीन हैं, न कि मैं इनके आधीन हूँ। यह समझ में आ जाने पर वासनाओं तथा इच्छाओं से विमुख होता जायगा, उनसे सम्बन्ध टूटता जायगा, और विचारों के आते रहने पर भी उनसे निश्चिन्त होता जायगा, अर्थात् आत्मा मन से न्यारी हो जायगी, उसके ऊपर से मन का आवरण हट जाने पर उसका असली रूप और नैसर्गिक गुण प्रकट होने लग जायेंगे। उनमें से एक यह है कि आत्मा को अपने अंशो सत्तपुरुष कुल मालिक परमेश्वर के चरणों में प्रेम पैदा होता जायगा जिसका आनन्द मिलने पर ध्यान उसी ओर लगा रहेगा और कर्म करता हुआ भी अकर्ता बना रहेगा। यही "मोक्ष" है और यही जीवन का परम-लक्ष्य है। उसको पूर्ण ज्ञान यानी असलियत का ज्ञान हो जायगा। जब तक मन के चक्कर में है वहाँ ज्ञान नहीं, सब अज्ञान है। उस ज्ञान को प्राप्त करके (मैं आत्मा स्वरूप हूँ, मेरा रिश्ता सिर्फ ईश्वर से है, अंश का अंशी से है, और वह रिश्ता हमेशा से है और हमेशा रहेगा), और उसी में लय होकर अपने शारीरिक बन्धनों को जो अज्ञानवश पैदा हुए थे कि "मैं शरीर हूँ" दुनियाँ के सब रिश्ते सदा के लिए टूट जायेंगे। सब में रहता हुआ, सबसे वर्तता हुआ सबसे अलहदा हो जायगा और तमाम संसारी बन्धनों से मुक्त हो जायगा। यही असली मोक्ष है।"

शिष्य "प्रभु, मैं समझ गया, किन्तु कोई ऐसा रहस्य अवश्य है जिसके कारण सन्तों ने गुरु-भक्ति की इतनी महिमा गाई है। कृपा करके उसे और समझा दीजिये।"

गुरुदेव ने गम्भीर होकर कहा—"भेद यह है कि जीवात्मा

का जन्म जन्मान्तर से दूसरों का सहारा लेने की आदत पड़ गई थी। बिना सहारा लिये और बिना दूसरे की सहायता के इसको कोई भी काम करना दूभर हो गया था। पहले यह अनेक सहारों पर निर्भर रहती थी। अब धीरे धीरे सब सहारों को छोड़कर केवल एक गुरु का सहारा रह गया। सबकी ओर से दृष्टि हट कर केवल एक की ओर लग गई। सब सहारे जाते रहे। अब जब वह इस एक में लय हो जायगी, मोक्ष स्वयं मिल जायगी।”

शिष्य—“यह ठीक है, इसको सहारे की आवश्यकता है, किन्तु क्या यह आवश्यक है कि वह सहारा गुरु का ही हो? सहारा तो किसी का भी हो सकता है—पत्नी का, मित्र का, माता-पिता का या किसी अन्य सम्बन्धी का। सहारा तो सहारा ही है चाहे वह किसी का क्यों न हो। वह किसी सहारे में लय होकर क्या मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता?”

गुरुदेव—“तुम ठीक कहते हो। इस संसार में सब बातें सम्भव हैं, किन्तु दूसरे सहारों में सदा खतरा है। वे खतरे और अनेकता के दोषों से बचे हुए नहीं हैं। तुम जिसका सहारा लोगे, उसके प्रभाव से न बच सकोगे, उसके गुण-दोष तुम्हारे भीतर प्रवेश करने लगेंगे और तुम उसके मन की वासनाओं के आधीन हो जाओगे। स्त्री का सहारा लेने से घर के झंझटों में फँसोगे, उसकी वासनाओं एवं इच्छाओं के चक्कर में फँस जाओगे। बादशाह का सहारा लेने पर देश की रक्षा और उससे सम्बन्धित, अनेक झंझटों में फँस जाओगे। वे सब तुम्हें घेरेंगे। बुद्धि का सहारा लेने पर अनेक तर्क-वितर्कों में फँसोगे, धर्म का सहारा लेने पर अनेक निन्दाओं और स्तुतिओं में फँसोगे। किसी सांसारिक वस्तु का सहारा संसार की अनेक वासनाओं और

उसके विचारों को पैदा करने वाला सिद्ध होगा। चाहे कोई भी सहारा लो, जिनका स्वयं तुमने अपने प्रश्न में कथन किया है, अनेकता के विचारों और इच्छाओं के वशीभूत हो जाओगे। उनसे नहीं बच सकते। इसलिये गुरु का ही सहारा उच्च, वरन उच्चतम सुखद एवं आनन्दप्रद होगा। इससे अनेकता का भ्रम दूर होता है, लौकिक एवं पारलौकिक इच्छाओं से छुटकारा मिलता है। दूसरों से ऐसी आशा करना धोखा है।

प्रश्न—“इसमें भी भेद है, कृपया उसे भी साफ़ कर दीजिये।”

उत्तर—“तुम्हारा विचार ठीक है। गुरु वह है जिसने अपनी सारी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। उसका ध्यान इन्द्रियों और सारे काल्पनिक विचारों से नाता तोड़ कर, उस सत्तपुरुष के चरणों में निरन्तर लगा रहता है। गुरु में एक-भाव होता है, अर्थात् उसकी आन्तरिक दृष्टि सदा सच्चे मालिक परमेश्वर के चरणों में लगी रहती है। इसलिये उसका सहारा लेने से धीरे-धीरे स्वयं उस एक-भाव (वहदानियत) का प्रभाव शिष्य में पैदा हो जायगा। यह गूढ़ बात है। जिसके अन्दर जो इच्छायें और वासनायें होती हैं, संगति के प्रभाव से वही आदत्त, स्वभाव और विचार उसके निकट बैठने वालों में पैदा हो जाते हैं। हिम के निकट बैठने से शीतलता और अग्नि के निकट बैठने से उष्णता का अनुभव होता है, यह सभी जानते हैं।”

प्रश्न—“प्रभु, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके भीतर भी कोई और रहस्य छिपा हुआ है। कृपा करके उसे भी समझा दीजिये जिससे मेरे मन में एक भी शंका शेष न रहे। यह सेवक आपके

सत्संग में आता है तो प्रत्यक्ष सत्संग का प्रभाव अनुभव करता है, किन्तु वह प्रभाव स्थायी नहीं रहने पाता। सदा स्थिर नहीं रहता। हिम और अग्नि का प्रभाव केवल उस समय तक रहता है जब तक उसकी निकटता रहती है। क्या यह सम्भव नहीं कि गुरु के सत्संग का प्रभाव भी उसी प्रकार थोड़े से समय के लिए ही होता हो ?”

उत्तर—“वत्स, तुम्हें बाल की खाल निकालने की आदत सी पड़ गई है, इसलिये मेरे प्रत्येक उत्तर में कोई न कोई रहस्य पाते हो। रहस्य से रहित कोई भी विषय (नुक़ता, Point) नहीं है। प्रत्येक विषय स्वयं एक रहस्य है। सारा संसार स्वयं एक रहस्य है। प्रभाव क्षणिक और अस्थायी होता है, यह ठीक है, किन्तु गुरु की संगति के प्रभाव में एक और असर है जिसका संकेत पहले भी कई बार किया जा चुका है। किन्तु तुमने ध्यान नहीं दिया। ध्यान पूर्वक सुनो। गुरु की संगति के प्रभाव से शिष्य में ग्रहण (जज्व) करने की योग्यता आजाती है और उसमें अपने अन्दर घुसने की आदत पड़ जाती है। जितना वह अपने अन्तर में घुसता जायगा, आनन्द, ज्ञान और प्रेम का अनुभव करता जायगा। और जितना अन्तर में ठहराव होता जायगा उतना ही वह आनन्द, ज्ञान एवं प्रेम स्थायी होते जायगे। इसके साथ साथ जितनी अधिक चाल अन्तर में चलेगा उतने ही यह आनन्द आदिक बढ़ते चले जायेंगे इसी के प्रभाव से वह एक दिन सत्तपुरुष जो स्वयं उसके अंदर है के दर्शन करके कृतार्थ हो जायगा और उसकी हार्दिक मनो-कामना पूर्ण हो जायगी। तुम इस प्रकार के सत्संग के प्रभाव को क्षणिक और अस्थायी नहीं कह सकते बल्कि यह वह स्थिति है जो अवर्णनीय है, यह गूंगे का गुड़ है।”

शिष्य आनन्द से उछल पड़ा और प्रेम पूर्वक निवेदन करने लगा — “प्रभु, मैं खूब अच्छी तरह समझ गया। यद्यपि प्रभु ने यहाँ भी कोई न कोई भेद छिपा रखा है। किन्तु अब मैं समझ गया और अधिक प्रश्न न करूँगा। आप धन्य हैं और मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ क्योंकि आप जैसे महापुरुष के दर्शन हुए और श्री-चरणों का सत्संग प्राप्त हुआ। यदि मैं अपने देश से आकर प्रभु के दर्शन न करता तो मेरे अन्तर के विकार, संशय और भ्रम कैसे दूर होते ?”

गुरुदेव — “रहस्य का रखना प्रकृति का एक विशेष गुण है। उसका स्वभाव है। संसार का प्रत्येक व्यवहार रहस्य से भरा होता है। रहस्य का परदा उठाना प्रत्येक के लिए मंजूर नहीं है। परदा केवल व्यक्ति विशेष के लिये उठाया जाता है। परन्तु जिनके लिये उठाया जाता है वे मजबूरन स्वयं परदेदार बने रहते हैं अर्थात् रहस्य को गूढ़ रखने की कला में दोष नहीं आने देते। पुरुष स्त्री के सामने नग्न हो जाते हैं। स्त्री पुरुष के लिये अपना परदा उठा देती है। पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष की फिर भी परदादार बनी रहती है। यह सिद्धान्त है। अपने पुत्र से माँ परदा नहीं करती। अपने शरीर के अंग उसके लिये खोल देती है, फिर भी पुत्र अपनी माँ का परदादार बना ही रहता है। इसी तरह परदे की बात हर जगह परदे में ही की जाती है। यहाँ पग पग पर परदा रहता है। आत्मा शरीर के अन्दर परदों में ही छिपी रहती है। यह परदे केवल आत्मा के पुजारियों के लिये ही उठाये या फाड़े जाते हैं। आत्मा का ज्ञानी उसकी दशा का वर्णन दूसरों पर नहीं कर सकता, और यदि चाहें भी तो उसका वर्णन नहीं हो सकता, न कोई उसका वर्णन कर सकता है और न कोई उस स्थिति पर पहुँचे बिना समझ ही सकता है।

जुवाँ जब नहीं फिर कहेंगे वो क्या ।
 न ये राजदाँ देंगे उसका पता ।
 किसी के यहाँ आँख मीची हुई ।
 किसी दिल की ताकत से खींची हुई ।

संसार में ऐसे अनेक महान एवं आश्चर्य से चकित कर देने वाले व्यक्ति हैं जो प्रत्यक्ष में एकदम छोटे और निपट अज्ञानी मालूम होते हैं किन्तु वास्तव में वे पूर्ण ज्ञानी होते हैं और निरन्तर शाश्वत आनन्द का पान करते रहते हैं । वे अपने आप को छिपा कर रखते हैं और भीतर ही भीतर ईश्वर प्रेम में निमग्न रहते हैं । इसके साथ ही दूसरी ओर यहाँ पर बहुत से अत्यन्त विद्वान भी आध्यात्म विद्या में नादान, अनपढ़ और अज्ञानी प्रतीत होते हैं । यहाँ कोई बात निश्चित नहीं है ।

आरिफों को भी नहीं इसका पता ।
 है ताज्जुब, भाँड से किसने कहा ।

अगर कान रखते हो तो सुनते चलो । यदि आँखें हैं तो देखते चलो । यदि आश्चर्य करते हो तो विस्मय करते चलो और जिह्वा, आँख तथा कानों को बन्द रखो । परमात्मा सर्वशक्तिमान है । अर्थात् उसमें सारी शक्तियाँ वर्तमान हैं । जिससे चाहे, शक्ति देकर अपना काम कराले । वह अनन्त और असोम है । सारी प्रशंसा और गुणगान उस एक परमात्मा के लिये है । वही आलिम, हकीम, शबीर और वसीर है अर्थात् वही पूर्ण विद्वान, पूर्ण बुद्धिमान तथा सर्वत्रव्याप्त है । यह आध्यात्म विद्या का ज्ञान है । इस सागर का न वार है न पार । किसी ने आज तक पूर्ण रूप से उसे नहीं जान पाया । यह आदमी की शक्ति से परे है । केवल

अधिकार बढ़ाते जाओ, मन को शुद्ध एवं पवित्र बनाते चलो जिससे आसानी से काम बनता चले। काम से काम रखौ और बस। ज्यादा बात चीत बेमतलब और बेकार है।

आज तुमने गुरु-पूजा का भेद समझ लिया। इसमें शक नहीं कि गुरु पूजा एक मूर्ति-पूजा है जिसकी नींव स्वयं खुदा या भगवान ने रखी। उसी ने मिट्टी के पुतले "आदम" को बनाकर फ़रिश्तों और उनके उस्ताद इज़राईल से कहा कि इसकी पूजा करो। वहाँ से बृत्त-परस्ती अथवा मूर्ति-पूजा का श्रीगणेश हुआ। जो व्यक्ति पूरे गुरु की शरण ग्रहण नहीं करता वह कभी भी परमात्मा का पुजारी नहीं बन सकता। उक्त पुरातन कथा में मूर्ति-पूजा की ओर संकेत है। "गुरु" ही "आदम" हैं। वह पूर्ण-ज्ञानी पुरुष हैं। आदम परस्ती अथवा गुरु पूजा प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव होना चाहिये, तब वह सच्चाई तथा वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। इसके बिना उस सत पुरुष तक पहुंचना महा कठिन है।

बिना गुरु धारण किये और बिना उसकी आज्ञा पालन किये अर्थात् उसके बताये अभ्यास के बिना किये अन्तर का रास्ता नहीं खुलेगा और आत्मा एवं परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे। इसी कारण सब महापुरुषों ने गुरु-पूजन और गुरु-भक्ति पर बल दिया है। गुरु पूर्ण ज्ञानी का नाम है जो सब तरह से पूर्ण हो। पूर्ण ज्ञानों के प्रकट गुण यह हैं :—

उसका शरीर सही एवं शुद्ध हो। उसकी भक्ति शुद्ध हो, उसका चरित्र ठीक हो। उसके होश, उसकी बुद्धि शुद्ध हो। ललाट उभरा हुआ और चौड़ा हो। आँखों में आकर्षित कर लेने वाली चमक हो, नूरानी हों। छोटे और तंग माथे का न हो। आँखों की

बनावट ठीक हो, उनमें दोष न हो। यह प्रकट पहिचाने हैं। भीतरी पहिचान आन्तरिक लक्षणों से होती है। एक पहिचान वीच की है जो बाहरी और भीतरी दोनों हालतों पर प्रकाश डालती है। यह मध्य की वस्तु “वाणी” है जो देहरी के दीपक की भाँति भीतर और बाहर का हाल दिखाती है। जिसका अन्दर अच्छा होगा, उसका बाहर भी अच्छा होगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि बाहर के अच्छे होने पर अन्दर भी अच्छा हो। दुनियाँ धोखे की जगह है। यहाँ भेष बदल कर लोग दूसरों को ठगा करते हैं। इसलिये गुरु की वाणी की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यदि उसकी स्थिति ऊँची है तो ऊँचे स्थान की बातचीत करेगा और सुनने वालों पर उसका प्रभाव अवश्य होगा क्योंकि उसने इस बात की कमाई कर रखी है। दूसरी पहिचान यह है कि बातचीत करते समय सुनने वालों के दिल का झुकाव आत्मा की ओर होगा। गूढ़ समस्याओं के समझाते समय श्रोतागण उन्हें समझ जायेंगे जो उसकी अनुपस्थिति में सम्भवतः समझ में न आयें।

“तीसरी पहिचान यह है कि शिष्य जब ध्यानावस्था में होता है अथवा सो रहा होता है तो गुरु उसकी शंकायें दूर करता है और उसके प्रश्नों के उत्तर देता है जिससे श्रद्धा एवं विश्वास बढ़ते हैं। चौथी पहिचान यह है कि उसके पास बैठने और उसके सत्संग में जाने से शान्ति मिलती है। सांसारिक विचार कम उठते हैं और परमात्म-विषयक विचार आते रहते हैं। वार्तालाप करने में ही गुरु प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। इन सब बातों से उनकी स्थिति का अनुमान हो सकता है। इससे अधिक परख करना साधारण मनुष्य की शक्ति से परे है। किसी कवि ने कहा है :—

कल्बे आरिफ़ लामकाँ है बेगुमा ।

फ़ौकोपस्ती का नहीं उसमें निशाँ ॥

जर्जर गर चाहे कि नापे कोह को ।
 अक्ल दानिश अपनी वह डालेगा खो ॥
 मर्दे आरिफ़ का हो क्योंकर इम्तिहाँ ।
 अक्ल है लाचार उसमें बेगुमाँ ॥

(भावार्थ—गुरु का हृदय लामकाँ है, उसकी कोई हृद नहीं है । उसकी ऊँचाई और नीचाई का कोई चिन्ह नहीं है । यदि एक कण चाहे कि वह पर्वत को नापे तो वह अपनी बुद्धि खो बैठेगा । भक्तों की पहिचान करना बहुत कठिन है । बुद्धि की वहाँ पहुँच नहीं है ।)



अध्याय ५

गुरु और जातीयता का प्रश्न ।

अगले दिन जब शिष्य गुरुदेव के दरवार में आया तो उसके मस्तिष्क में विचारों की उथल पुथल मची हुई थी किन्तु कुछ निवेदन करने का साहस न होता था । प्रणाम करके चुपचाप एक ओर को बैठ गया । किन्तु गुरुदेव समझ गये और उन्होंने पूछा—
“वत्स, आज चुप क्यों हो, कौन सी शंका तुम्हारे मन को विचलित कर रही है ?”

शिष्य—प्रभु ! आपने पहले ही कह दिया है कि आध्यात्म में जातीयता का प्रश्न, जात-पाँत का सवाल नहीं होता । इसी से कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती और पूछने के लिये मन चलायमान है ।

गुरुदेव—मैंने कब तुम्हारा मुँह बन्द किया है । अभी तक तुम्हारी जुवान खुली हुई है । रोक की मोहर उस पर तब लगाई जायेगी जब तुम गुरु-दीक्षा प्राप्त करके अभ्यास प्रारम्भ करोगे । गुरु दीक्षा को सूफियों में “बैत” कहते हैं और बैत के मायने हैं “बिक जाना” । जो बिक चुका हो वह कब स्वतन्त्र है ? तुमने अभी दीक्षा नहीं ली है, इसलिये तुम स्वतन्त्र हो । अभी तो मैं तुम्हें सच्चा सूफी भी नहीं मानता । हाँ, नाम के सूफी जरूर हो । बोलो, और

कहो, किसी बात को दिल में मत रखो अन्यथा अभ्यास के समय तुम्हारे यह विचार विघ्न डालेंगे।

शिष्य— जातीयता में एक प्रकार का प्रेम स्वजातीय के साथ होता है। श्री महाराज ने कहा है कि कबीर साहब ने एक हिन्दू को गुरु बनाया। मैं इसको ठीक नहीं समझता। मेरा यह विरोध किसी अहंभाव, अभिमान या जातीयता के विरोध के कारण नहीं है बल्कि सिद्धान्त के कारण है। जब खुदा ने आदम (मनुष्य) को पैदा किया और फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि उसको पूजा और उससे प्रेम करो, तो उसने वास्तव में यह समझाया कि प्रेम स्वजातीय (हमजिन्स) के साथ हो सकता है, विजातीय (ग़ैरजिन्स) के साथ नहीं। स्वयं परमात्मा का प्रेम जीव के हृदय में स्थित नहीं हो सकता क्योंकि परमात्मा शुद्ध आत्मा है और जीव, आत्मा तथा शरीर की मिलौनी है। वह परमात्मा के जलाल और जमाल, पूर्ण प्रकाश एवं सम्पूर्ण गुणों को सहन नहीं कर सकता, उसके विराट रूप को नहीं देख सकता। इसलिये अपनी पूजा का रिवाज (आदम) (मनुष्य) की सूरत में किया। जब यह हाल है तो विजातीय के साथ प्रेम कैसे हो सकता है ?

गुरुदेव मुस्कराये और बोले— मैं तुम्हारी इस बात को सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। तुमने बहुत अच्छा किया जो यह प्रश्न पूछ लिया अन्यथा पीछे यह दुख देता। सारे व्यक्तियों की, चाहे वे किसी धर्म के हों, अथवा किसी सम्प्रदाय के, जाति एक है। पशुओं की जाति दूसरी है। क्या इतनी जातीयता यथेष्ट नहीं है जो तुम और आगे बढ़ने हो ? और अगर बिना ज़रूरत आगे बढ़ोगे तो सैकड़ों खतरे आयेंगे और आध्यात्म की उन्नति कभी नहीं होगी। यदि तुम विभिन्न मतों और धर्मों को एक जाति का

नहीं समझते हो तो व्यवसायों और रंग-रूपों की दृष्टि से वे सब विभिन्न नज़र आयेंगे और कभी एक जाति के (हमजिन्स) नहीं हो सकेंगे। यदि तुम्हारा विचार सही है तो ब्राह्मण और शूद्र के बीच प्रेम नहीं होना चाहिए। किन्तु मेरे मित्र रैदास जी शूद्र जाति के हैं जिनके शिष्यों में अनेक ब्राह्मण और क्षत्रिय भी हैं। कबीर साहब मुसलमान के यहाँ जन्मे, उनके गुरु ब्राह्मण थे और बहुत से हिन्दू उनके शिष्य हैं। इस प्रकार की आपत्ति ब्रह्मविद्या में व्यर्थ और अनुचित है।

नीच नीच सब तर गये, सन्त चरण लवलीन।
जाति बड़ी अभिमान से, बूड़े सकल कुलीन।
उत्तम और चण्डाल घर, इक दीपक उजियार।
कबीर मते पतंग के, सभी जोत एक सार ॥

हज की नियत हो तो हाजी साथ लो।
ख्वाह वो हिन्दू हो या अरब या तुर्क हो ॥
रंग रूप से क्या गरज तालिब को हो।
देखो उसमें अज्म और आहंग को ॥
तुर्क दो बाहम हैं अक्सर कीनाजो।
तुर्क हिन्दू दो हैं अक्सर एक खो ॥

(भावार्थ—यदि हज करने की इच्छा है तो ऐसे व्यक्ति को साथ लो जो हज कर चुका हो और मार्ग प्रदर्शन करे। ऐसा व्यक्ति चाहे हिन्दू हो, चाहे अरब और चाहे मुसलमान। जिज्ञासु को ऐसे व्यक्ति के रंग रूप से कुछ मतलब नहीं होना चाहिये। उसके इरादे और मज़बूती को देखो। दो तुर्क अक्सर आपस में एक दूसरे से कीना रखते हैं। तुर्क और हिन्दू अक्सर एक ही आदत के होते हैं।)

एक बात तो यह हुई। दूसरी बात और सुनो। फ़रिश्ता और इन्सान, यानी देवता और मनुष्य, दोनों विजायतीय (गैर जिन्स) हैं। वे केवल आध्यात्म की दृष्टि से एक रूप एवं स्वजातीय से दीखते हैं। इसी कारण परमात्मा ने सबसे पहले देवताओं (फ़रिश्तों) को मनुष्य को सीस नवाने की और पूजने की आज्ञा दी। यदि वह ऐसा न करता तो फिर बड़े आदमियों की छोटी हैसियत वाले फ़कीरों की ओर से उदासीनता होती। यदि तुम इन दोनों को अच्छी तरह समझ लो तो तुम्हारी शंकाओं की जड़ कट जायगी। दुनियाँ में भेद भाव की बातें नित्य प्रति बढ़ती जा रही हैं, यहाँ तक कि सूफ़ियों के बीच भी भेद भाव की कमी नहीं दिखाई पड़ती। सबसे पहले कबीर साहब ने यह बात देखी और उसके दूर करने के लिए असली परमार्थ की इमारत की नींव डाली जिससे किसी तरह हिन्दू और मुसलमान जुदा-जुदा होते हुए भी आध्यात्म के मामले में मिल जुल कर रहें और आपसी लड़ाई भगड़े तथा भेद भाव से दूर रहें। कबीर साहब दुनियाँ में पहले आध्यात्मिक गुरु हुए हैं जिन्होंने हर जाति वर्ण के लोगों को आध्यात्म के विषय में खुली तौर पर आमन्त्रित किया और यदि ध्यान से देखो तो तुम्हें उनकी शिक्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव इस देश में दृष्टिगोचर होगा।

शिष्य—हे प्रभू, आपने फ़ना और बक्रा अर्थात् लय और पुनर्जीवन के शब्द प्रयोग किये हैं। यह शब्द सूफ़ियों और सालिकों (पन्थाइयों) के हैं। क्या आपका सम्बन्ध सालिकों (पन्थाइयों, रास्ता चलने वालों) और सूफ़ियों से है ?

गुरु—मेरा सम्बन्ध सब से है और किसी से भी नहीं। ख़ाली और मिला हुआ (ख़ला और मिला) मेरे व्यक्तित्व के दो गुण हैं। इन्हीं के पदों में मेरी तलाश की जाती है। जब मैं सबसे मिला

जुला रहता हूँ तो मेरे गुण को 'मिला' यानी मिला हुआ कहते हैं और जब मैं मेल-जोल से खाली हो जाता हूँ तो उसका नाम 'खुला' यानी खाली है। यह दोनों मेरे गुण हैं। और जब मैं इन दोनों से न्यारा हो जाता हूँ, वही मेरा असली स्वरूप है। जो गुणों के भगड़े में पड़े रहते हैं उन्हें व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं होता। जो गुणों को छोड़कर व्यक्तित्व की ओर ध्यान देते हैं उन्हें ही वास्तव में असली स्वरूप का ज्ञान होता है। हिन्दू शास्त्र गुणों (सिफ़त) को ही 'माया' कहते हैं और व्यक्तित्व को 'ब्रह्म' कहते हैं। किन्तु यहाँ एक बात समझने की है। यदि नाम और रूप का भगड़ा रहा तो फिर परमात्मा का अस्तित्व समझ में नहीं आयेगा। ब्रह्म कहने सुनने के लिए एक शब्द है और वस। यदि उसकी व्याख्या में पड़े तो वास्तविकता से दूर हो जाओगे। परमात्मा से दूरी हो जाएगी और माया के चक्कर और बन्धन में फंस जाओगे। इसलिये उनके अर्थों से दूर रहना चाहिये और केवल असल और वास्तविकता से सम्बन्ध रखना चाहिए। काम तो परमात्मा से है। गुणों से न्यारा होना ही परमात्मा का प्रेम है (सिफ़त की बेताल्लुकी ही ज्ञात का ताल्लुक है)।

किन्तु दुनियाँ गुणों का आदर करने और उनका मूल्य जानने की हर समय इच्छुक रहती है। अपना या अपने स्वरूप का, अपनी आत्मा का ज्ञान कोई कोई ही प्राप्त करना चाहता है। गुणों का ज्ञान दुख पैदा करता है और अज्ञानता की खाई में डालता है।

इत्रो-जौहर सारे इल्मों का ये है ।
 हो खबर तुझको कि तू है कौन शै ॥
 सब की कीमत पूछता है रोज़ो-शब ।
 अपनी कीमत की नहीं तुझको खबर ॥

सख्त नादाँ हम समझते हैं तुम्हे ।
तेरी नादानी से क्या मतलब मुम्हे ॥

(भावार्थ—संसार में जितनी विद्यायें हैं उन सबका यह सार है कि तुम्हे यह ज्ञान हो जाये कि वास्तव में तू कौन है । तू औरों का मूल्य तो दिन रात पूँछा करता है किन्तु स्वयं अपना मूल्य नहीं जानता । हम तुम्हे बड़ा मूर्ख और अज्ञानी समझते हैं किन्तु हमें तेरी इस मूर्खता से कोई अभिप्राय नहीं ।)

परमात्मा का नाम लेने का आशय यह है कि नामी की खोज की जाय और उसके लिये तप अभ्यास आदि किये जायें । नाम के ही भगड़े में न पड़ा रहे अन्यथा वास्तविकता से दूर जा पड़ेगा । नाम नीचा है, नामी उससे ऊँचा है । किन्तु नाम का आश्रय लेकर नामी तक पहुँचते हैं इसलिये नाम का महत्व अधिक है । सूफ़ियों में “सालिक” और “तरीक़त” दो शब्द प्रायः प्रयोग में आते हैं । सालिक कहते हैं ‘चलने वाले’ को, अर्थात्, पन्थाई । “तरीक़त” वह है जिस पर चला जाता है, अर्थात् पन्थ । जो रास्ते पर चल रहा है वही साधक, सालिक एवं पन्थाई है, और जो नहीं चल रहा वह न सालिक है और न साधक ।

तुमने मुझ से प्रश्न किया है कि क्या मैं सालिक, साधक या अभ्यासी हूँ ? मैंने उत्तर दे दिया । मैं सब कुछ हूँ और कुछ भी नहीं । मुझे क्या चलना और कहाँ चलना है ? चलेगा वह जिसे कहीं जाना हो और जिसे अपनी कोई कमी पूरी करनी हो । मैं कहाँ जाऊँ और कहाँ चढूँ । जब मैंने कह दिया कि यही सब कुछ है तो और बात रह ही क्या गई । साधक नाम सुन कर अपने अन्तर में ऊँची चढ़ाई करते हैं, अन्तर के ऊँचे स्थानों पर चढ़ते हैं और

नामी की खोज करते हैं। तुम जिस दृष्टिकोण से मुझ से प्रश्न करते हो उसी के अनुसार मैं तुम्हें समझाने का प्रयत्न करता हूँ। किसी सूफ़ी कवि ने कहा है :

नाम लेता है तो नामी को तलाश,
 तुझको लाजिम है ये सुन ऐ खुशमआश।
 चाँद को कूज़ा में देखा है अगर,
 आसमाँ की सिम्त कर अपनी नज़र।
 कूज़ा गिल में दरखशानी नहीं,
 वो है मिट्टी ज़ात नूरानी नहीं।
 आसमाँ पर देख रौशन है वो नूर,
 देखने से पायेगा दिल को सरूर।
 गर कहीं मिट्टी से तुझको काम है,
 अबलही इस अक्ल का अंजाम है।

(भावार्थ—यदि तू नाम लेता है तो नामी अर्थात् ईश्वर की खोज कर। ऐ साधक, अच्छी तरह सुन, यह तेरे लिये आवश्यक है। यदि तूने चन्द्रमा को मिट्टी के पात्र घड़े में देखा है तो अपनी दृष्टि आकाश की ओर उठा। घड़े में असली चमक नहीं है, वह तो मिट्टी है जो प्रकाश नहीं देती। आकाश की ओर देख, वह प्रकाश वहाँ चमक रहा है। उसके देखने से तेरे मन को शान्ति और आनन्द मिलेगा। यदि तुझे मिट्टी से ही काम है तो तेरी बुद्धि का ही परिणाम।)

शिष्य—प्रभु, आपने तरीक़त और पन्थ शब्दों के विषय में जो कुछ अभी बताने की कृपा की है, लगे हाथों उनकी बाराकियों को भी कृपया समझा दीजिये। जानने को तो मैं कुछ-कुछ जानता हूँ

किन्तु पूरी जानकारी नहीं हैं और न कोई सूफ़ी सन्त पूछने पर सन्तोषप्रद उत्तर देता है बल्कि भिड़कियाँ सुनाता है और भ्रमित तथा द्वैतवादी कहता है। अतः कृपा करके इस विषय को भी समझा दीजिये।

गुरु - वे लोग इन भिड़कियों से अपना अज्ञान प्रकट करते हैं। उनको इनकी वास्तविकता मालूम नहीं हैं। अगर भिड़कियाँ न दें तो क्या करें। हिन्दुओं में भी वही विधि प्रयोग में लाते हैं। प्रश्न करते ही मुँह बन्द देते हैं। किन्तु मैं इस भेद को जानता हूँ और तुम्हें बतलाऊँगा। आज तुम थके हुए हो। इस विषय को सभ्रमने के लिये मतिष्क ताज़ा हो तो अच्छा रहता है। अब तुम जाकर विश्राम करो। कल प्रातः सत्संग में आकर अपना प्रश्न फिर से रखना और मैं तुम्हें समझाऊँगा।

शिष्य ने झुक कर सादर प्रणाम किया। उल्टे पाँव द्वार तक आया और पुनः सीस नवाकर अपने ठहरने के स्थान पर चला गया। रात भर वे प्रश्न उसके मन-मतिष्क में घूमते रहे। प्रातः उठकर शौचादि से निवृत्त होकर सत्संग में गया। गुरुदेव पहले से ही विराजमान थे। उनकी सुन्दर मूर्ति को देखकर ठगा सा रह गया। आदर से सीस स्वयं नत हो गया। गुरुदेव मुस्कराये और बैठने का संकेत किया।

अध्याय ६

सन्तों का सप्त-सोपान (सात मंज़िलें)

शैतान (माया) एक पहेली

आज के सत्संग में शिष्य विशेष रूप से सचेत था। बड़ी तन्मयता तथा एकाग्रता के साथ आज के गहन विषय को सुनना चाहता था। जो संशय और शंकायें अनेक सूफ़ी न दूर कर सके, जिनको समझने के लिये उसे अनेकों झिड़कियाँ मिलीं और फिर भी उन्हें न समझ सका, आज गुरुदेव प्रेम पूर्वक उन्हें समझायेंगे, यह सोच-सोचकर उसका हृदय प्रेम और आनन्द से गदगद हो जाता। कभी कभी यह प्रेम और आनन्द नेत्रों की राह अश्रु बनकर छलकने लगते। गुरुदेव इस दशा को समझ गये और उन्होंने आज्ञा दी—
“वत्स, क्या पूछना चाहते हो?”

शिष्य ने नत मतष्क होकर आज्ञा शिरोधार्य की और निवेदन किया—

प्रश्न—प्रभु, कृपा करके बताइये कि सूफ़ी मत का प्रारम्भ कहाँ से हुआ ?

उत्तर—अब तुम पण्डितों की तरह बातें करने लगे और इतिहास पूछने लगे। वास्तविकता की तरफ़ ध्यान रखो और बस। किन्तु जब तुमने पूछा है तो बताता हूँ। सुनो, यह विद्या हिन्दुओं के यहाँ आदि से ही है और गुप्त रूप से एक अन्तर से दूसरे अन्तर में

चली आ रही है। जिस विधि से अब तक यह एक व्यक्ति से दूसरे में आती रही, उसे सूफियों में सीना-ब-सीना (Heart to Heart) कहते हैं। अर्थात् गुरु से शिष्य ने प्राप्त की और फिर यह कड़ी आगे इसी प्रकार चलती रही। यहाँ से पारसियों ने (जो हिन्दुओं का ही एक अंग हैं) ली। पारसियों से यहूदियों ने पाई। देश से निष्कासित हिन्दू इस विद्या को मिश्र देश में ले गये। बौद्धों ने इसे फ़ारस, इराक़, अरब, स्याम और रोम तक पहुँचाया। वहाँ से वह विद्या सिकन्दरिया और यूनान पहुँची। जब पारसियों को धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बनाया गया, उन्होंने अपने तसव्वुफ़ (ब्रह्मविद्या) का पैवन्द लगा कर उसे जीवित रखा। धार्मिक ग्रन्थ क़ुरान की आयतों का अनुवाद अपने दृष्टिकोण से करने लगे। किन्तु यह प्रारम्भ भी कहने सुनने के लिये है। यह विद्या प्राकृतिक नियमों का सार है और सदा से ही विद्यमान है। यदि कोई उसकी ओर भुक्तता है तो उसको उसका ज्ञान हो जाता है, अन्यथा वह उससे वंचित रहता है।

प्रश्न—कृपया इस पन्थ के जितने खण्ड हों उन्हें मुझे समझा दीजिये।

उत्तर—अब तुम रास्ते पर आये। इस मार्ग के सप्तसोपान हैं जिन्हे सूफ़ी लोग सात मंज़िलें कहते हैं—

१. तलब (जिज्ञासा)
२. इश्क़ (उपासना)
३. मारफ़त (ज्ञान)
४. तौहीद (अनेक से एक पर आना)
५. इस्तग़ना (उपराम)
६. फ़ना (लय)
७. बक्रा (पुनर्जीवन)

(१) तलब (जिज्ञासा) कहते हैं इच्छा, खाहिश और शौक को। किसी वस्तु या विषय को जानने की जिज्ञासा सबसे पहले पैदा होती है।

(२) इश्क (उपासना) कहते हैं इच्छाओं की घनीभूत दशा को। इसे आम लोग इश्क, प्रेम इत्यादि नामों से पुकारते हैं इसमें जिज्ञासा पूर्णता को प्राप्त होती है। साधक को जिस इष्ट के जानने की जिज्ञासा थी वह अब उससे प्रेम करने लगता है।

(३) मारफत (ज्ञान)—पहली अवस्था ध्यान एवं जिज्ञासा की थी। वही जिज्ञासा घनी होने पर इश्क अथवा प्रेम कहलाई और अब इश्क (प्रेम) होने पर वस्तु की पहचान होने लगी। इस पहचान अथवा जानकारी को ही ज्ञान कहते हैं। प्रेम में एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं और निकट आने पर उसका ज्ञान हो जाता है।

(४) तौहीद (एक भाव—अनेक से एक पर आना)—यह और कुछ नहीं, केवल खाहिश (इच्छा) की घनी सूरत है। जब विचारों में उभार हुआ और उनको ध्यान तथा ज्ञान से उन्नति और शक्ति मिलने लगी वही तौहीद (एक भाव) है। यह वेदान्तियों का स्थान है। यहाँ पहुँच कर कोई-२ व्यक्ति हृदय की भावनाओं को गुप्त रखने की शक्ति न रखते हुए 'अनलहक' अथवा 'अहंब्रह्म' की आवाज सुनाने लगते हैं। यह अवस्था केवल बीच की है। यही सब कुछ नहीं है और न हो सकती है, किन्तु जिससे कहा जाय वही लठू लेकर पीछे पड़ जाता है। माना कि यह स्थान बहुत ऊँचा है और इस स्थान तक पहुँचने का कार्य भी बहुत कठिन है किन्तु यह स्थान अन्तिम नहीं है, न हो सकता है और न होगा। पहले जिज्ञासा हुई, फिर प्रेम हुआ, तब उसका ज्ञान हो गया। अब जिससे प्रेम हो गया उसका ज्ञान भी हो गया। अब प्रेम एकमुखी होकर एक के सिवाय दूसरे को नहीं देखता।

इस अवस्था में आकर वेदान्ती कहता है—“एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति” और वह बड़े गर्व के साथ तर्क करता है कि अब इसके आगे क्या रहा ? सोचने की बात है कि शब्द ‘एक’ केवल आपेक्षिक (निस्वती, relative) शब्द है। ‘एक’ के गर्भ में ही ‘अनेक’ रहता है। जहाँ ‘एक’ (वहदत) होगा वहीं उस ‘एक’ के पेट में ही ‘अनेक’ (कसरत) रहेगा। यदि ‘अनेक’ न होता तो ‘एक’ का विचार कैसे आता ?

दूसरा कहता है “ला इलाहा इल् लिल्लाह” (कुछ नहीं है सिवाय एक अल्लाह के)। दोनों विचारों के भूले में पैंगे मार रहे हैं, किन्तु दिल्ली अभी दूर है, अभी असली लक्ष्य बहुत दूर है। यह स्थान जहाँ पर साधक ‘अहं ब्रह्मास्मि’ या अनल हक़’ कहता है अबधूतपन (मज़ज़ूबियत) का है और यहाँ खतरा बना रहता है। यहाँ भी प्रकृति है, नहीं तो कौन कहता और कौन अनेक की आवाज़ लगाता। ‘अहंब्रह्म’ और ‘अनलहक़’ दोनों शब्द ऐसे हैं, जिनमें दो का समन्वय है—एक कहने वाला और दूसरा ब्रह्म या हक़। ‘अहं’=मैं और ‘अना’=नहीं हूँ। ब्रह्म या हक़ अथवा परमेश्वर निर्लेप है। अतः इस स्थान पर उपरोक्त दो शब्दों में से ‘अहं’ (मैं) और ‘अना’ (नहीं हूँ) को शुद्ध करना अभी शेष है। जब केवल एक रह जायगा तब देखा जायगा।

(५) इस्तग़ना (उपराम)—जब एकपना और ‘एकोभाव’ से जी भर जायगा, तब उससे तबियत ऊब गई। आदमी एक रस से आखिर ऊब ही जाता है। अब दिल में बेपरवाही और उदासीनता (इस्तग़ना) की स्थिति पैदा हो जाती है—यह प्रकृत नियम है। इस अवस्था में न प्रेम है न घृणा। न किसी से लगाव है न दुराव। इसी उदासीनता को इस्तग़ना या उपराम कहते हैं।

(६) फ़ना (लय)— इस्तग़ना या उपराम की अवस्था जब परिपक्व हो जाती है, उसी को 'फ़ना' या 'लय' कहते हैं। 'फ़ना' का अर्थ 'मर जाना' या नष्ट हो जाना नहीं है। प्रकृति में कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती और न हो सकती है। नाश होना या मादूम होना भी एक अवस्था है जिसमें किसी वस्तु के प्रकट होने का अभाव रहता है। यही जीवन का असल लक्ष्य और सूफ़ियों के शब्दों में मंज़िले-मक़सूद है।

इस्तग़ना या उपराम की बढ़ती हुई हालत परिपक्व होने पर अभ्यासी को बिल्कुल आत्मा में लय करके छोड़ देती है। इसी अवस्था का नाम 'फ़ना' या 'लय' है। 'फ़ना' किसी वस्तु के नष्ट हो जाने को नहीं कहते हैं, वह साधन की एक अवस्था है, जिसमें भूठे 'अहंभाव' की 'फ़ना' (लय) हो जाती है।

(७) बक्रा (पुनर्जीवन) जब तक फ़ना (लय) एवं उस अवस्था की प्राप्ति नहीं होती है तब तक 'बक्रा' एवं परमसत्य का मिलना कठिन है। जब पूर्ण लय की अवस्था प्राप्त हो जाती है वही फ़ना या लय अवस्था 'बक्रा' या 'पुनर्जीवन' का नाम पाती है। यहाँ आकर उपासक (आबिद) उपास्य (माबूद) और उपासना (इबादत) किसी का ज्ञान शेष नहीं रहता। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान अर्थात् साधक, साध्य और साधन एक हो जाते हैं। इस अवस्था में 'कोई' या 'किसी' का ज्ञान शेष नहीं रहता। यह असली 'एकभाव' (तौहीद) है, जिसका आरम्भ 'प्रेम' (इश्क़) से हुआ था।

प्रश्न—यह सप्त-सोपान (मंज़िलें) कहाँ हैं और किस तरह तय की जाती हैं ?

उत्तर—यह सोपान तुम्हारे अन्दर हैं, अन्दर ही से तय की जाती हैं। यह बड़ा गहन विषय है। इसको किसी और अवसर पर

तुम्हें समझा दूंगा। तुम एक दिन अभ्यासियों की समस्याओं के बारे में कुछ पूछना चाहते थे। आज क्या सोच रहे हो ?

शिष्य— प्रभु, कल रात ही मैं मुझे खुदा और शैतान का प्रश्न सता रहा है। मेरे लिये एक पहेली बनी हुई है कि खुदा किसको कहूँ और शैतान किसको ?

गुरुदेव हँसे और बोले— खुदा को खुदा कहो और शैतान को शैतान कहो। जब तक अहंभाव और दुई है तब तक खुदा खुदा है और शैतान शैतान। जब अहंभाव और द्वैतभाव दूर हो जायेंगे तब शैतान और खुदा दोनों मिल कर एक हो जायेंगे। जब तक यह दो हैं तब तक खटपट मची रहेगी। भगड़ा तो हमेशा दो में होता है। एक में भगड़ा कभी नहीं होता। दत्तात्रेय ऋषि अवधूत थे। अपने विचारों में मग्न एक दिन बाजार में होकर जा रहे थे। भड़भूजे की लड़की धान कूट रही थी। उसकी कलाई में दो चूड़ियाँ पड़ी हुई थी जो आपस में टकरा कर खनखनाहट की ध्वनि पैदा करती थीं। यह ध्वनि उसे बुरी लगती थी। जब वह धान कूटने के लिये मूसली उठाती तो चूड़ियाँ खनखनाने लगतीं। बेचारी लड़की ने दो-चार बार चूड़ियों को कलाई के ऊपर चढ़ाया, किन्तु वे फिर नीचे उतर आतीं और खनखनाने लगतीं। क्रोध में आकर लड़की ने एक चूड़ी फोड़ दी और जब एक रह गई तो खनखनाहट की ध्वनि जाती रही और वह प्रसन्न हो गई। ऋषि ने यह हाल देखकर उसे नमस्कार किया और कहा “तू आज से मेरी गुरु है। मैंने तुझ से आज ऐकेश्वरवाद (एक को पूजने वाला वहदत परस्त) की निराली शिक्षा प्राप्त की है।” यह कह कर वे एक ओर को चल दिये।

इसी प्रकार जब तुम्हारे हृदय में खुदा और शैतान दोनों बसते हैं तब तक परेशानी होनी ही होनी है। यह कोई नई बात नहीं है।

अब तुम यहाँ आये हो, शैतान को दूर कर दो। जब खुदा अकेला रह जायगा तो चैन आ जायगा।

प्रश्न—यह खुदा और शैतान क्या है? क्या यह दोनों ही सत् (हक, खुदा) हैं।

उत्तर—यदि सत् (हक, खुदा) हैं तो दोनों ही हैं और यदि असत् (नाहक) हैं तो दोनों ही नाहक (ख्याली) हैं। यह सिर्फ कहने सुनने की बातें हैं।

प्रश्न—यह बड़ी आश्चर्यजनक बात मालूम हुई। अभी तक तो मैं खुदा को सत् (हक) और अस्तित्व वाला तथा शैतान को असत् और बिना अस्तित्व वाला समझ रहा था। अब आप दोनों ही को सत् (हक) बतला रहे हैं।

उत्तर—ऐसा ज्ञान होता है कि तुमने अपने देश के सूफियों के विचारों पर भी ध्यान नहीं दिया, इसलिये भ्रम में पड़े हो। जब तक अपनी आँखों से खुदा और शैतान को न देख लोगे, तुम्हारा यह भ्रम दूर न होगा।

प्रश्न—यह एक और नई बात हुई। क्या खुदा और शैतान देखने की चीजें हैं।

उत्तर—यदि खुदा नाम रखा जाता है और उसका रूप निश्चित किया जाता है तो वह देखने की चीज क्यों न होगी। इसको तो नादान से नादान आदमी भी समझ सकता है। यदि किसी ने खुदा को नहीं देखा तो फिर उसे उसके नाम पर नड़ने-भगड़ने और आस्तीन चढ़ाने का क्या अधिकार है। इस समय तुम बुद्धिहीन लोगों की सी बातें करते हो। बिना देखे हुए खुदा की

मौहब्बत तुम्हारे अन्दर पैदा कैसे होगी। इस विषय में हिन्दू और मुसलमान दोनों एक जैसे हैं—

“न उनके मूँछ न उनके कान,
जैसे उदयी वैसे भान।”

प्रश्न क्या श्रीमहाराज ने खुदा को देखा है ?

उत्तर - यदि मैंने देखा न होता तो किस तरह तुम्हें समझाने और तुम्हारे साथ बातचीत करने का साहस करता। मैंने देखा है तभी तो कह रहा हूँ। वैसे तो तुम मुझे भी भूठा ही समझते। मैंने अपनी आँखों से दोनों को देखा है।

प्रश्न—श्रीमहाराज, शैतान इस समय कहाँ है ?

उत्तर—इस समय वह तुम्हारे हृदय के भीतर है। इसी कारण तुम परेशान हो और बहकी बहकी बातें कर रहे हो। शैतान का तो काम ही बहकाने, भ्रमाने और पथभ्रष्ट करने का है।

प्रश्न—शैतान का कोई शरीर तो है नहीं, जिसे श्रीमहाराज ने देखा है।

उत्तर—शरीर का ही तो नाम शैतान है और शैतान होता ही क्या है ?

प्रश्न—तब मुझे भी दिखलाइये। मैं भी उसे एक दृष्टि से देख लूँ।

उत्तर—हाँ, मैं तुम्हें दिखलाऊँगा और दिखा सकता हूँ। ज़रा कुछ दिनों मेरी संगति में रह कर सत्संग करो। स्वयं तुम्हें उसकी समझ आ जायगी। जल्दी क्यों करते हो ? जल्दी शैतान का काम

है। इस जल्दी की आदत को छोड़ते चलो। तुम स्वयं किसी न किसी दिन शैतान को देख लोगे और मान जाओगे कि शैतान के शरीर होता है।

शिष्य को आश्चर्य और सन्देह हुआ और बोला—प्रभु वचन देकर न टालिये और न पहेलियाँ बुझवाइये। मैं तो आज ही शैतान को देखना चाहता हूँ।

गुरु—तो मैं भी आज ही तुम्हें दिखा कर छोड़ूंगा। किन्तु कठिनाई तो यह है कि तुम आये थे खुदा को देखने के लिये और अब शैतान को देखने का हठ कर रहे हो। तुमने बहुत जल्दी पैतरा बदल दिया। ऐसे ही आदमी अपने आशय से दूर जा पड़ते हैं। जब अच्छी वस्तु की मन में चाह पैदा हुई तो उसे पक्का करना चाहिए। अब बुरी चाह को मन में क्यों पैदा करते हो। ज्ञान अज्ञान से उत्तम है और नैकी बदी से अच्छी है—यह तो तुम भी जानते हो।

शिष्य लज्जित हुआ और निवेदन करने लगा—प्रभु, अब मैं कुछ नहीं कहूँगा।

गुरुदेव के अन्तर में दया उमड़ी और फिर समझाना शुरू किया—सुनो बत्स, आत्मा ईश्वर है, रूह खुदा है और शरीर ही शैतान है। प्रकाश या नूर ईश्वर है और परछाई (साया) शैतान है। सत् और हकीकत खुदा है तथा प्रकृति, माद्दा (matter) शैतान है और दोनों की मिली जुली हालत (सम्मिश्रण) का नाम दुनियाँ है। जो व्यक्ति आत्मा का उपासक है, जिसकी दृष्टि आत्मा या असलियत एवं सत् की ओर है वह ईश्वर के समीप है और जो व्यक्ति केवल शरीर के उपासक है (जिस्म-परस्त) है, हर समय शरीर की देखभाल में लगे हुए है वे ईश्वर से दूर और शैतान के

समीप हैं। सारे प्राणी और स्वयं तुम भी आत्मा और शरीर के मेल से बने हो, जिसके बीच की कड़ी दिल है। दिल अगर आत्मा की ओर लगा हुआ है तो वह परमात्मा के समीप है और अगर दिल शरीर और उससे सम्बन्धित इन्द्रियभोग आदि बातों में लगा है तो वह शैतान के समीप है। हिन्दू इसी को द्वैतवाद कहते हैं। चूँकि इस विद्या का प्रारम्भ भारतवर्ष से हुआ, यहाँ पर अब तक अपनी असली हालत में कायम है। एक को 'पुरुष' और दूसरे को 'प्रकृति' या एक को 'ब्रह्म' और दूसरे को 'माया' कहते हैं। हिन्दुओं से यह विद्या पारसियों ने ली और 'नेकी' तथा 'बदी' के दो अलग-अलग खुदा मान लिये। वे इन्हें 'एहज़त' और 'हरमन' कहते हैं। पारसियों से यहूदियों ने सीखी और उन्होंने इनका नाम 'अल्लाह' और 'शैतान' रखा। अरब के मुसलमान चूँकि असल और नसल में यहूदी ही थे, उन्होंने इन नामों को ज्यूँ का त्यूँ रहने दिया और उनकी व्याख्या नहीं की। एक हाथ की ककड़ी को भी नौ हाथ का बीज लग गया। तुममें आत्मा है वह परमात्मा का अंश है। तुममें शरीर है वह शैतान यानी माया, प्रकृति या मादा (matter) का हिस्सा है। तुम मनुष्य हो इसलिये तुम में दोनों मिले जुले रहते हैं और तुम दोनों को देखते हुए भी अन्धे बने हुए हो। यही अज्ञान है।

शिष्य— मैं इसको सही कैसे मान लूँ? जब धर्म-ग्रन्थों में शैतान (माया) के विषय में बहुत सी कहावतें मौजूद हैं तो क्या वह सब की सब भूठ हैं?

गुरु— मैं न किसी को सच कहता हूँ और न किसी को भूठ कहना चाहता हूँ। संसार में बात कहने के अलग-अलग तरीके हैं। कोई अपने विचारों को किसी तरह प्रकट करता है और कोई किसी तरह। विद्वान पुरुष सच्चाई को समझते हैं और और शब्दों की ओर ध्यान नहीं देते। बेवकूफ और अज्ञानी लोग शब्दों के गोरख-

धन्धे में फँस जाते हैं और सच्चाई की ओर से पथभ्रष्ट हो जाते हैं। एक कवि ने किसी मनुष्य से कहा—‘यह शेर है।’ ‘शेर’ कहने से आशय यह तो नहीं है कि वह मनुष्य वास्तव में शेर बन गया। वीरता, साहस, दिलेरी और हौसले के कारण उसको शेर कहा गया। इसी प्रकार सभी धर्म-ग्रन्थों में कवियों की तरह उपमा तथा अलंकारों से काम लिया गया है। तुम शब्दों में अटकते हो। शब्दों में मृत्यु है, अज्ञानता है और असलियत व सच्चाई से दूर हैं। जीवन और सच्चाई तो केवल आत्मा में है। वही शाश्वत (सदा रहने वाली) है। आत्मा-प्रिय (रूह-पसन्द) अथवा आत्मा को प्रिय समझने वाला अपना दिल बना लो। आत्म-प्रियता की दृष्टि से सब को निहारो, तब यह पहली तुम्हारी समझ में आ जायगी।

शिष्य—श्रीमहाराज ने बात तो ठीक कही है किन्तु मेरा संशय अभी तक मेरे मन से दूर नहीं हुआ।

गुरु—तो फिर अपने संशयों को प्रकट क्यों नहीं करते हो ? मैं भी ज़रा उन्हें सुन लूँ तब तुम्हें समझाऊँगा।

शिष्य ने निवेदन किया—परमात्मा ने फरिश्तों (देवताओं) को आज्ञा दी कि आदम (मनुष्य) को पूजो और उसे सिजदा (प्रणाम) करो। सब फरिश्तों ने तो उस आज्ञा का पालन किया किन्तु शैतान ने जो फरिश्तों का उस्ताद है, सिजदा करने से मना कर दिया। वह पथ-भ्रष्ट हुआ और नीचे गिराया गया। क्या यह कहावत असत्य है ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—कहावत तो असत्य नहीं है किन्तु ग़लती तुम्हारी समझ की है। तुम अब तक न तो फरिश्तों को समझते हो और न शैतान को। फरिश्ता नाम है प्रकृति की सूक्ष्म

शक्तियों का । जो सन्देश वाहक (पैगाम ले जाने वाला) होता है वह फ़रिश्ता है । यह सब मनुष्य की मातहतती में हैं इसीलिये मरदूद यानी पथभ्रष्ट नहीं हुए । अतः कहा गया कि आदम को सब फ़रिश्तों ने सिजदा किया, किन्तु स्थूल शरीर की चाल नीचे की दिशा में है । वह मनुष्य की वास्तविकता की ओर नहीं झुकती । इसीलिये उसे मरदूद (पथभ्रष्ट, नीच) कहा है । कोई उसे जला देता है, कोई उसे ज़मीन में गाढ़ देता है । यह शरीर ही शैतान है, अर्थात् इस शरीर को ही सब कुछ समझ लेने का नाम ही शैतान-परस्ती है । दूसरा न शैतान कोई है और न मैं उसे समझता हूँ ।

प्रश्न—किन्तु यह शैतान फ़रिश्तों का उस्ताद क्यों कहा गया ? इसमें भी तो कोई भेद होगा ?

उत्तर—हाँ, इसमें भी रहस्य है । यह जगत शरीर माया एवं प्रकृति है और यही समस्त बुद्धि एवं ज्ञान का गुरु है । उसे उद्धीप्त करने वाला और बढ़ाने वाला है । यह दुनियाँ ही सारी अक्ल और हवासों की उस्ताद है । यदि जगत के दृष्य इनको देखने को न आते तो इनके विचारों में कम्पन (हरकत) किस तरह पैदा होता और यह किस तरह सोचते विचारते । मनुष्य दुनियाँ को ही देख कर शिक्षा लेता है । दुनियाँ को ही देखकर उसके भाव चंचल हो उठते हैं, उसके विचारों में कम्पन होता है, उसके ख्यालात को हरकत मिलती है । अब अगर यह उस्ताद या गुरु नहीं तो कौन है ? तुम समझते हो कि किसी विशेष काल में शैतान फ़रिश्तों का उस्ताद रहा होगा, किन्तु मैं तो अब भी खुली आँखों प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि वह तो आज भी फ़रिश्तों का उस्ताद है और अपने कर्तव्य को उसी प्रकार पूरा कर रहा है जैसा पहले करता था ।

उसकी हैसियत में कोई अन्तर नहीं आया, उसका स्वरूप वैसे का वैसे ही है और वह अभी तक गुरु बना हुआ है।

प्रश्न—वह लोगों को पथ-भ्रष्ट करता रहता है, उन्हें भटकाता और गुमराह करता रहता है। क्या उसने 'हीवा' को नहीं बहकाया था, और क्या शैतान अब भी मनुष्य की सन्तति को नहीं बहकाता है?

उत्तर—हाँ, वह अब तक भी बहकाता रहता है। यह तुम्हारा शरीर ही तो शैतान की औलाद है जो तुमको बदनियत, ब्रदमिजाज और दिल का बुरा बनाता है। तुम उसी के कारण अपने शरीर को आराम देने की चिन्ता में पड़ कर स्वार्थी, स्वार्थ सेवी और स्वार्थप्रिय बन जाते हो। अभिमानी बन जाते हो और अपने स्वार्थ के कारण रात-दिन दूसरों की क्षति करते हो। संसार में कितने आदमी हैं जो आत्मा का ध्यान रखते हैं, सच्चाई का ध्यान रखते हैं और उसकी ओर प्रवृत्त होते हैं। यहाँ तो सबके सब शरीर, मन एवं बुद्धि के गुलाम हैं। ईश्वर को पूजने वाले बहुत कम हैं और शैतान अथवा माया के उपासक बहुत अधिक हैं। मनुष्य वर्ग का एक-एक बच्चा माया और शैतान के प्रभाव में है और सबके सब शरीर की देख भाल, इन्द्रिय-भोग और मन की वासनाओं के चक्कर में फँसे हुए हैं। क्या अब भी तुम्हारा मन और शरीर तुमको नहीं बहकाता है जिसके कारण तुम चंचल बने रहते हो। बात संकेत के रूप में कही गई। तुमने मर्तलव की ओर ध्यान नहीं दिया और शब्दों के फेर में फँस गये, कुछ का कुछ समझ बैठे और झलती तथा धोखे में पड़े हुए हो। यदि कोई समझाने वाला मिल जाता तो ऐसा कभी न होता। अब कही, क्या और भी कोई कर्हावत है जिसके कारण तुम्हारे मन में संशय है।

शिष्य—शैतान के सम्बन्ध में एक दो नहीं सैकड़ों कहावतें हैं। उनसे उपमा तथा साँकेतिक भाषा से भले ही काम लिया गया हो किन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आती। यदि आपकी बात सत्य है तब शैतान का कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता और न उसका अस्तित्व ही शेष रहता है।

गुरुदेव हँसे और बोले—मैं तुम्हारी बात को समझ गया, तुम शैतान को सब जगह फैला हुआ मान रहे हो और यह मानते हो कि उसका कोई विशेष रंग और रूप है। मैं इस विचार के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहता हूँ बल्कि इसकी पुष्टि करता हूँ। तुम यह समझ लो कि सारे जगत के इन्द्रिय-भाग तथा शरीर सम्बन्धी विचारों के समूह का नाम शैतान है, वही माया है। उसका रूप काल्पनिक है। इसके विपरीत सारे जगत में फैले हुए सत्य और आत्मा सम्बन्धी विचारों के समूह का नाम परमात्मा या अल्लाह है।

शिष्य इस व्याख्या से सन्तुष्ट हो गया और बहुत प्रसन्न हुआ। आज का सत्संग यहीं पर विसर्जन हुआ। अगले दिन जब फिर से सत्संगी जमा हुए और शिष्य प्रणाम करके अपने स्थान पर बैठा तो गुरुदेव ने पूछा—“वत्स, क्या सोच रहे हो?”

शिष्य ने उत्तर दिया—प्रभु, आपके वचनों को मैं रात भर सोचता रहा। मुझे सन्तोष हो गया। मैंने सोच लिया कि शैतान केवल मन की वासनाओं और इन्द्रिय-भोग के समूहों का नाम है और सूफ़ी भी ऐसा ही कहते हैं। किन्तु श्रीमहाराज ने इसके अतिरिक्त भी कई बातें कही हैं जो मेरे मन में खटक रही हैं और समझ में नहीं आती।

गुरुदेव—फिर अपने मन के काँटों को निकाल डालो, कोई

खटक शेष न रहे। गुरु की संगति का यही लाभ है कि उनकी संगति से भ्रम और संशय दूर हो जाते हैं। तुम एक भी शंका मन में न रहने दो, अन्यथा वह आत्मिक उन्नति में रोड़ा बन कर विघ्न पैदा करेगी और तुम्हारा अनर्थ होगा।

शिष्य—श्री महाराज ने एक अवसर पर प्रकृति (matter माद्दा) को 'शैतान' का नाम दिया था। माद्दा (matter) तो निर्जीव पदार्थ है, वह किसी का क्या अनर्थ करेगा और क्या किसी को पथभ्रष्ट करेगा ?

गुरुदेव—तुमने कैसे जाना कि माद्दा या प्रकृति निर्जीव है ?

शिष्य—वह अचल और गतिहीन (बेहिस और बेहरकत) है। इसलिये मैं उसे बेजान (निर्जीव) कहता हूँ।

गुरुदेव—तुम सोते समय अचल और गतिहीन हो जाते हो। तन-बदन और सिर पैर की खबर नहीं रहती। क्या तुम उस समय निर्जीव हो जाते हो ? मैं तो यहाँ किसी वस्तु को निर्जीव नहीं पाता। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें स्फुरण और स्पन्दन न हो। मिट्टी, लकड़ी, कंकड़, सोना, चाँदी, सभी में तो स्पन्दन है। इनके परिमाणु निरन्तर गति (हरकत) में रहते हैं, तभी तो इनकी हालत प्रति क्षण बदलती रहती है। वे अग्नि, जल एवं वायु के प्रभाव को ग्रहण कर लेते हैं और कुछ के कुछ बन जाते हैं। यदि उनमें गति और स्फुरण-स्पन्दन न होता तो परिवर्तन कैसे होता ? जल भाप बनकर ऊपर उठता है, बर्फ बनकर नीचे गिरता है, धार के रूप में नीचे बहता है। पानी की एक बूँद भी यहाँ अचल और स्तब्ध, नहीं दिखाई देती। मिट्टी बदलती है। दूसरे परिमाणुओं को ग्रहण करके थोड़े ही दिनों में कुछ की कुछ हो जाती है। यह मिट्टी

ही तो है जो सोना, चाँदी, लाल, जवाहर, और नमक बन जाती है, और बन बन कर उनकी तक्रदीर पलटा करती है, बनती है और बिगड़ती है। फिर यह सब वस्तुएँ स्फुरण-स्पन्दन और गति से खाली कैसे हुईं। और यदि स्फुरण इस बात का प्रमाण है कि इन में जान है तो यह वस्तुएँ निर्जीव कैसे हुईं ?

शिष्य--इनका स्फुरण किसी जानदार वस्तु पर आघारित है ?

गुरुदेव--मिट्टी के टुकड़े को अग्नि ने जलाया, हवा ने उड़ाया, पानी ने अपना अंग बनाया। इनमें जानदार कौन है ?

शिष्य--यह सब ईश्वर के आधीन हैं।

गुरुदेव--परमात्मा सजीव है या निर्जीव ?

शिष्य--परमात्मा सजीव है, जानदार है।

गुरुदेव--यदि परमात्मा सजीव है तो वह तुच्छ, सीमित और अपूर्ण कैसे हुआ ? सजीव या जानदार का अर्थ है जिसमें जान हो। एक हुई जान और दूसरा हुआ उसका रखने वाला और तीसरी हुई रखने की शक्ति। तुम्हारे अपने शब्दों से तीन बातों का पता चलता है। जान रखने वाला जान से भिन्न हुआ। जान कुछ और होगी और उसके रखने वाला कोई अन्य पदार्थ होगा और फिर जान रखने की शक्ति कोई तीसरी वस्तु होगी, और यह तीनों ही सीमित होंगी। उनमें से पूर्ण (मुकम्मिल) कोई भी नहीं हुई। इस तर्क से तो परमात्मा तुच्छ ठहरा और तुम उस तुच्छ (नाकिस) परमात्मा के पूजने वाले हुए।

शिष्य से कोई उत्तर न बन पड़ा। वह शान्त हो गया।

गुरुदेव ने पुनः कहना आरम्भ किया--सुनो वत्स, यहाँ न

कोई वस्तु सजीव है न निर्जीव, चेतन है न अचेतन । जो है सो है । इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता । जान और बेजान तुलनात्मक (relative) शब्द हैं, एक का दूसरे से बोध कराते हैं । एक का दूसरे से सम्बन्ध है । अपनी तुच्छ बुद्धि से हम जीवों को तुलनात्मक श्रेणी में रख कर अपने दृष्टिकोण से किसी को सजीव और किसी को निर्जीव ठहराते हैं और बड़ा-छोटा मान लेते हैं । बात केवल इतनी ही है और वस । जब अभ्यास करते करते बुद्धि शुद्ध हो जाती है तो वे तुलनात्मक सीमायें स्वयं हट जाती हैं और उनका पता नहीं रहता क्योंकि उनकी नींव भ्रम पर आधारित थी, और भ्रम या वहम सदा नहीं बना रहता । इस भ्रम के कारण ही तुम किसी को आत्मा और किसी को प्रकृति या मादा कहते हो । किसी को शैतान और किसी को खुदा समझते हो । जब भ्रम की जड़ कट जायगी तो तुलना करने वाली बात, जिससे तुलना की जायगी, वह स्वयं ही खतम हो जायगी ।

शिष्य—परमात्मा क्या है ?

गुरुदेव हैंसे— एक प्रश्न का अभी समाधान नहीं हुआ, दूसरा आगया । परमात्मा या खुदा उसे कहते हैं 'जो खुद आया हो ।' खुदा वास्तव में व्यक्तित्व (ज्ञात) का नाम है । परमात्मा न कहीं से आया और न कहीं गया । वह अजन्मा और अनन्त है । नादानों ने अज्ञानवश व्यक्तित्व का ऐसा नाम रख दिया । तुम जानते हो कि जो आता है वह जाता भी है । आना जाना तुच्छ और अपूर्ण (नाकिस और गैर मुकम्मिल) होने का गुण है । जो स्वयं व्यक्तित्व (ज्ञात) है उसका कहाँ आना है और कहाँ जाना है ? किसमें समाना है और किससे पृथक होना है ? जिसके विषय में कुछ कहा न जा सके वही परमात्मा, खुदा और उसका व्यक्तित्व (ज्ञात) है ।

जिसके विषय में कुछ कहा जाय वह गुण है। परमात्मा अनिर्वचनीय तथा गुणों से न्यारा है। परमात्मा को जानने के विषय में अभी से प्रश्न मत उठाओ। पहले मानव (इन्सान) को जानने का प्रयास करो। जब इन्सान को जान जाओगे तब परमात्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करना।

शिष्य— यह इन्सान क्या है ?

गुरुदेव— इन्सान या मानव, शरीर, मन और आत्मा से बना है। जिसमें शरीर हो, मन हो और आत्मा हो, तथा जो रात दिन इन्हीं में भ्रमता रहता हो, वही मानव या इन्सान है। साधारण इन्सान दुनियाँ में असंख्य हैं, किन्तु वे पूर्ण (मुकम्मिल) नहीं हैं। पूर्ण (मुकम्मिल) मानव वह है जिसका शरीर पूर्ण हो और आत्मा की पूर्णता भी उसे प्राप्त हो। मैं पूर्ण मानव (इन्सान कामिल) हूँ और साधारण मनुष्यों को अपनी पूर्णता का फ़ैज़ बख़्शने आया हूँ। तुम पूर्ण मानव (कामिल इन्सान) नहीं हो। मेरी पूर्णता का फ़ैज़ पाकर किसी समय पूर्ण और कामिल हो जाओगे।

प्रश्न— शरीर, मन और आत्मा, इन तीनों के पृथक पृथक क्या गुण है ?

उत्तर— शरीर की दृष्टि से वह हीन है, निम्न कोटि का है। शरीर उसे निचले हिस्से में अर्थात् इन्द्रिय-भोग में फँसे रहने के लिये विवश करता है। आत्मा की दृष्टि से वह ऊपर उठाता है और उच्च से उच्चतम स्थान पर स्थित होता है। मन की दृष्टि से वह मध्य का है। कभी ऊँचे और उत्तम विचारों से सम्बन्ध रखता है तो कभी नीचे और निकृष्ट विचारों से। मन, आत्मा और शरीर के बीच की कड़ी है। मनुष्य एक ऐसा जीवित प्राणी है जिसका एक

हाथ दयाल देश को छूता है और दूसरा पाताल को, और मन की शक्ति से वह बीच में रहता है। यदि उसकी प्रवृत्ति नीचे की ओर है तो समझ लो कि शैतान ने वहका कर नीचे गिरा दिया। यदि वह ऊपर की ओर गया तो परमात्मा से मिल कर एक हो गया। एक तो वह अब भी है किन्तु मन के भ्रम के कारण ऊँचे-नीचे, शुभ-अशुभ, अच्छे बुरे विचारों के बन्धन में पड़ा है। मानव यदि चाहे तो सबसे ऊँचा चढ़ सकता है और यदि वह नीचे जाना चाहे तो इतना नीचे उतर सकता है कि फिर कोई वस्तु उससे नीची नहीं है। जहाँ मानव की पहुँच है वहाँ फ़रिश्तों और देवताओं की नहीं है। मानव का दर्जा इन सबसे बहुत ऊँचा है, वह परमेश्वर के समीप है, उसका नायब है। ऊँचे जाना आध्यात्म की उन्नति है, नीचे जाना माया के गड्ढे में गिरना है और दीन-धर्म, कर्म-धर्म के भगड़ों में दिन रात फँसे रहना मन की यानी बीच की स्थिति है जो न ऊँची है और न नीची। यह मानव की विशेषता है। साधारण अथवा सामान्य मानव द्वन्द-अवस्था में पड़े रहते हैं। द्वन्द में खींचा-तानी होती है, कभी अच्छा कभी बुरा—नेकी-बदी, भूठ-सच, धनी-निर्धन, आदि बातें—जहाँ भी दो हैं, द्वन्द की अवस्था है। सामान्य मनुष्य इस भगड़े की अवस्था में पड़े हुए परेशानी उठाया करते हैं। पूर्ण मानव अर्थात् इन्सान-कामिल चाहे जिस अवस्था में हो, शान्ति एवं सन्तोष, सुख-चैन, और इतमीनान का आनन्द लूटता रहता है। मुझको देखो, मुझे किसी प्रकार का दुख नहीं क्योंकि मैंने शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। मेरा मन भी मेरे अधिकार में है, उसकी भावनायें मुझे नहीं सतातीं। मैं शरीरधारी होते हुए भी आत्म-रूप हूँ। किन्तु तुम्हारी अवस्था ऐसी नहीं है। तुम देहधारी मानव हो और अपने मन की भावनाओं के अनुकूल नाचते हो। मैं युग-प्रवर्तक, सन्त, सत्गुरु और पूर्ण

प्राध्यामिक गुरु के रूप में आया हूँ। तुम जैसे जीवों को असलियत और सच्चाई की शिक्षा दे देकर अपने उच्च लोक, सत् लोक में ले जाऊँगा। मेरा जन्म केवल भूले-भटके जिज्ञामुग्रों को सच्ची राह पर लगाने और सहारा देने के लिये हुआ है। तुम देह हो और मन हो, इसलिये यह शरीर तुम्हें शैतान बन कर सता रहा है। इसकी वासनाओं और इच्छाओं में तुम्हारा समय बीतता है, और जो देहधारी मनुष्य हैं, अर्थात् जो केवल अपनी देह को ही मुख्यता देते हैं, उन्हें दुख और तकलीफ़ में रहना ही उचित और आवश्यक है। कबीर साहब ने कहा है :—

तन-घर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो,
आदि अन्त की बात कहत हूँ, सत का कौन विवेका हो।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही वैरागी हो,
सुखदेव ने दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो।
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो,
आशा तृष्णा सबको व्यापे, कोई महल ना सूना हो।
साँच कहूँ तो कोई न माने, भूठ कहा नहिं जाई हो,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।

प्रश्न—मानव के गुण तो मुझे ऐसे याद हो गये कि मैं आमरण नहीं भूलूँगा, किन्तु शैतान के विषय में अब भी संशय शेष है।

उत्तर—शैतान बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है और इस तरह तुम से चिपट गया है कि मेरा मंत्र भी उसे दूर नहीं कर सकता, किन्तु कोई बात नहीं। मैं भी इस भूत को निकाल कर

छोड़गा अन्यथा नाम बदल दूँगा। तुम केवल मेरे शब्दों को चेत कर सुनो और उन्हें ध्यानपूर्वक सुनते चलो, यह भूत ऐसा भागेगा जैसे गधे के सिर से सींग। बताओ वह कौन सा संशय तुम्हारे मन में है जो तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ रहा ?

प्रश्न—प्रभु, हमें इस्लाम ने यह शिक्षा दी है कि शैतान (या माया) इन्सान को पथभ्रष्ट करता रहता है। नेक राह से हटा देता है और हर तरह के भगड़ों में फँसा देता है। विरोध और वैमनस्य कराता रहता है। सूफ़ी लोग इसे 'नफ़स अम्मारा' कहते हैं और आपने इसे 'शरीर' कहा है।

उत्तर—मैं भी सच्चा हूँ और सूफ़ी भी सच्चे हैं। मन जब शरीर पर उतर आता है और उससे सम्बन्ध रखने लगता है तो उसे शैतान समझो। यही नफ़स-अम्मारा है। नफ़स-अम्मारा के सींग पूँछ नहीं होते। यह स्वार्थ से पूर्ण मन ही तो है जो तुमको सीधे रास्ते पर नहीं आने देता। नेकी से हटाकर बदी की ओर ले जाता है। तुम चाहते हो कि भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेदार और मनुष्य मात्र के साथ प्रेम एवं स्नेह का नाता जोड़ो, किन्तु यह मन तुम्हें उल्टी पट्टी पढ़ा कर धर्म की आड़ में जाति-पाँत के धोखे में, रीति-रिवाज के धोखे की सूरत में, नक़ली सभ्यता के रूप में इन्सान से घृणा करने की शिक्षा देता है। और तुम उसके जाल व धोखे में फँस कर किसी को नास्तिक, किसी को अधर्मी, किसी को द्वैतवादी (मुशरिक) और किसी को दुष्ट कहने लग जाते हो, और व्यर्थ ही भेदभाव तथा अपने और परायेपन के महल को भव्य और विशाल बनाते जाते हो। यह शरीर और इच्छाओं में लगा हुआ मन ही तो है जो मनुष्य को स्वार्थी बना कर इन्सान और हैवान की गर्दन कटवाता है और निर्दोष अनाथों

के गले वुटवाता है। यही तो शैतान या माया का शुभ-कर्मों के प्रति विरोध है। वह आत्मा के हर काम में बाधक बनता रहता है। तुम चाहते हो कि हम आत्मा की सीमा में पग रखें, परन्तु मन धोखा देकर आरामतलवी की सूझ सुझाता है। तुम आलसी और सुस्त बन जाते हो। क्या तुम इस सत्संग में नहीं देखते कि मैं जब तुमसे परमार्थ पर वार्तालाप करता हूँ कई आदमी ऐसे हैं जो शरीर और शरीर-सम्बन्धी मन के धोखे में सो रहे हैं और सब की आँखों देखे खुराटि ले रहे हैं। यह सब शैतान के मारे हुए हैं। इनको शैतान ने बुरी तरह से दबाया है। यहाँ तक कि सत्संग में आकर भी होशियारी से वचन नहीं सुनते और बेहोश तथा आलसी बने हुए हैं। ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि सब बुरी बातें केवल शरीर को पूजने और उसको प्रमुखता देने के कारण हैं। शरीर को पूजने का नाम ही शैतान को पूजना या शैतान-परस्ती है। और इसी के जाल की जंजीर को पाश पाश करके तोड़ देना जप-तप, मन की साधना, मन का नियमन तथा साधन है।

कहो, अब भी तुम्हारा भूत भागा या नहीं। न भागा हो तो मैं दूसरे मंत्र का अमल करूँ।

शिष्य, खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला—‘महाराज, भूत भाग गया। अब उसने सदा के लिये मेरा पीछा छोड़ दिया। आपके दरबार में भूत कैसे रह सकता है? वह ऐसा भागा है कि हजारों कोस उसका पता नहीं है। शैतान की असलियत अब मेरी समझ में आ गई है। अब मैं कोई प्रश्न नहीं करूँगा।

गुरुदेव मुस्कराये—परमात्मा का धन्यवाद है कि तुम्हारे सिर से बला टल गई। यह बहुत बुरी बला थी और यह मिथ्या भ्रम

बहुत से जीवों को सताता रहता है। यदि वे मेरे पास आवें तो मैं सरलता पूर्वक उनका इलाज कर दूँ।

इस वार्तालाप के पश्चात् सत्संग विसर्जन हुआ। शिष्य ने गुरुदेव के चरणों की वन्दना की और अपने ठहरने के स्थान पर चला गया।



अध्याय ७

दीक्षा लेने की आवश्यकता

दूसरे दिन सत्संग में शिष्य का पहला प्रश्न इस प्रकार था—

प्रश्न—श्रीमहाराज ने, गुरु-पूजा के सिलसिले में व्रत करने की (गुरुदीक्षा लेने की) आवश्यकता की भी व्याख्या कर दी थी, किन्तु मैं इस विषय में कुछ और अधिक विवेचन सुनना चाहता हूँ। कृपा करके इस विषय की और अधिक व्याख्या कर दीजिये।

उत्तर—क्यों नहीं, तुम संस्कारी जीव हो, इसलिये तुमने बिना मुँह खोले दिल से सवाल किये हैं। दिल से सवाल वही कर सकते हैं जो अधिकारी जीव हैं। बिना अधिकार के न कोई इसे समझ सकता है और न इसका आदर सम्मान कर सकता है। बिना मुँह खोले दिल से सवाल करना आध्यात्मिक विद्या की विशेषता है और बिना मुँह खोले उत्तर दे देना गुरु की विशेषता है। तुमने संकेत किया और यदि मैं भी संकेत में ही उत्तर दे देता हूँ तो तुम तो समझ ही जाओगे, क्योंकि तुम्हारा मन-मस्तिष्क साफ़ है। किन्तु यह सब सत्संगी जो यहाँ बैठे हैं, कुछ भी न समझ पायेंगे क्योंकि इनके दिल की सफ़ाई नहीं हुई है और उनमें अभी बहुत सारे विचार भरे पड़े हैं। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि अपने इष्ट की ओर रहती है और जिसने अब तक अपना ध्येय निश्चित नहीं किया वह जिज्ञासा

की कमी के कारण दिल से दिल की बात को समझने का अधिकार नहीं रखता। यहाँ बहुत से आदमी बैठे हैं। उनके विचार सुझ से आकर टकराते हैं और मैं उन्हीं के विषय में बातें करता हूँ। वे तो समझते हैं कि हमारे मतलब की बातें कही जा रही हैं, ध्यान पूर्वक सुनते हैं और फायदा उठाते हैं, किन्तु दूसरे आदमी उनको मामूली बातचीत समझते हैं और उससे विशेष लाभ नहीं उठाते।

प्रत्येक व्यक्ति में तीन प्रकार के विचार बाहर से आकर प्रवेश करते हैं। देखने से, सुनने से और कहने से, अर्थात् दृष्टि से, श्रवण से और वाणी से। सूफियों में देखने को मुशाहदा, सुनने को सामा और कहने को कलाम कहते हैं। जो कुछ शिक्षा दी जाती है वह इन्हीं तीनों माध्यमों के द्वारा दी जाती है। चौथी अवस्था बहुत ऊँची है और वही असली इष्ट है। तुमने संकेत में प्रश्न किया कि गुरुदीक्षा लेने (बैत करने) की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जाय। बहुत अच्छा, सुनो। हर हालत को देखने सुनने और वार्तालाप के समय साक्षी (गवाह) की आवश्यकता है, तभी उसको सच्चाई का पूरा विश्वास होता है। गवाह तीन हैं। मनुष्य का दिल पहला गवाह है, गुरु दूसरा और परमात्मा तीसरा गवाह है। वही असली गुरु और साक्षी है। किन्तु जिनका इन तीनों में से किसी एक से भी सम्बन्ध नहीं वह इसको नहीं समझ सकता और इस पर विश्वास भी नहीं कर सकता। मनुष्य के हृदय (दिल) में हर तरह के विचार उठते रहते हैं। वह उन पर सोच-विचार करता रहता है और असलियत को जानने की कोशिश करता रहता है। यह पहला साक्षी है। किन्तु मनुष्य स्वभावतः हृदय की भावनाओं को काल्पनिक और अमपूर्ण समझता है, और यह सत्य भी है। जब तक मनुष्य का हृदय शुद्ध न हो जावे और उसमें से उसका

अहंभाव मिट कर सफ़ाई और शान्ति न आजाय तब तक अधिकतर विचार झूठे होते हैं और उसको ग़लत रास्ते पर डाल कर विनाश की ओर ले जाते हैं। इसीलिये विश्वास के योग्य नहीं होते। जब तक इस प्रकार के विचारों और भावनाओं की पुष्टि किसी पूर्ण-ज्ञानी महापुरुष द्वारा न कर दी जाय अर्थात् उसका प्रमाण पत्र (शहादत) न मिल जाय, उनको कार्यरूप में नहीं लाना चाहिये। इसलिए पहले साक्षी यानी हृदय (दिल) की गवाही (शहदत) व्यर्थ और बेमतलब रही। अब किसी और की गवाही होनी चाहिये। अन्य साक्षी परमात्मा की है। उसकी साक्षी का न तो मनुष्य को ज्ञान है और न विश्वास। अतः उसके लिये यह साक्षी भी बेमूल्य रही। अब ऐसे साक्षी की आवश्यकता है कि जो कुछ जिज्ञासु ने सोचा है, देखा है और सुना है, उसकी पुष्टि कर दे। जब तक साक्षी नहीं मिलती, उसकी बातें सही नहीं मानी जा सकतीं। परमेश्वर की साक्षी, गुरु की साक्षी और अपने हृदय की साक्षी, सभी जिज्ञासुओं के सन्तोष के लिये आवश्यक है। कोई बात उसके मन में आई और गुरु ने उसको ठीक बताया तो उस बात की पुष्टि हो गई। अब जिज्ञासु को उस बात के सत्य होने का विश्वास हो गया। गुरु ने ऋषियों की वाणी और शास्त्रों का हवाला देकर उस बात की और भी तसदीक़ करदी। अब जिज्ञासु को उस बात की सत्यता में कोई संशय नहीं रहा।

हिन्दू शास्त्र कहते हैं कि जिस बात में गुरु, वेद और अपने मन का अनुभव, तीनों शामिल हैं, अर्थात् जब तीनों की आपस में एक दूसरे से पुष्टि हो जाती है, वही बात ग्रहण करने योग्य है। यदि इनमें से किसी एक की भी कमी है तो विद्वानों को चाहिये कि वे उनको न तो सत्य समझें और न असत्य बल्कि भविष्य के विचार और स्वाध्याय पर छोड़ दें। कभी न कभी वह फहली

सुलभ जायगी। हठ और जिद से काम लेने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू लोग वेदों को ईश्वर की वाणी मानते हैं जो ऋषियों पर उतरी थी, और वेदों का वचन है कि जिस बात में वेद, गुरु और अपने मन का अनुभव शामिल न हो तो उसे न तो सत्य मानना चाहिये और न उसे कार्यरूप देना चाहिये। दूसरों के कहने पर कार्य करना बड़ी भूल है। बुद्धि द्वारा भी यह बात सत्य मानी गई है कि और के कहने पर अभ्यास और अमल को ठीक नहीं मान लेना चाहिये।

अब कठिनाई यह पैदा हो गई कि वेद केवल विद्वानों और पण्डितों की सम्पत्ति हो गये और जिस विषय का सम्बन्ध अभ्यास से था वह मौखिक तर्क-वितर्क का विषय रह गया। वेद वाचक-ज्ञानियों, स्वार्थी और मतलबी पण्डितों के हाथ में आ गये जो केवल शब्दों और उनके ऊटपटांग अर्थों के जंजाल में अटकाते हैं और केवल अपने स्वार्थ की ओर दृष्टि रखते हैं। वे इसके सिवाय कर भी क्या सकते हैं। वे वेदों की आत्मा अर्थात् उसके असली अर्थ और तत्व से बिलकुल अनभिज्ञ और कोरे हैं और अपने मन की वासनाओं में फँसे हुए हैं। ऐसा व्यक्ति जो भी अर्थ निकालेगा अपने स्वार्थ का ही निकालेगा। यह साक्षी इस प्रकार बेकार हो गई और यहाँ तक बिगड़ी कि हिन्दुओं ने उन पवित्र वेदों को उठा कर एक तरफ़ ताक़ में रख दिया। अब रह गये गुरु, वह स्वयं ब्राह्मण बन बैठे (जिनका परिचय ऊपर दिया जा चुका है) जिन्हें केवल पुस्तक-ज्ञान है, किन्तु आन्तरिक अभ्यास और साधन को वे छूकर भी नहीं जानते और जो कुछ मौखिक ज्ञान है वह भी स्वार्थ से भरा हुआ है। जिसने रास्ता स्वयं नहीं देखा और न उस पर चला, वह दूसरों को क्या बतलायेगा और चलायेगा। ऐसे गुरुओं से तो दूर ही दूर रहना अच्छा है। यह दूसरी साक्षी भी जाती रही।

अब रह गई अपने दिल की गवाही अर्थात् निज के अनुभव या आत्म-साक्षी । इसके सम्बन्ध में तुम स्वयं जानते हो कि मनुष्य का मन तरह तरह के विचारों को उठाता रहता है । अनुकूल और प्रतिकूल भावनाओं को ठीक ठीक समझने, उन पर निश्चित रूप से कोई निर्णय लेने में वह नितान्त असमर्थ और लाचार हो जाता है । वह पूरे विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि उसका देखा हुआ, सुना हुआ, कहा हुआ या सोचा हुआ विषय कहाँ तक विश्वास करने योग्य है । यह भी साक्षी बेकार है ।

अब तीनों साक्षियाँ बेकार हो गईं और यह निश्चय करना कि क्या उचित है और क्या अनुचित, कौन सी बात सही है और कौन सी गलत, असम्भव है । जब यह दशा हो गई तो सब अपनी मन-मानी करने लगे और ऐसी दशा में जो होना चाहिए था वही हुआ, मन का साम्राज्य हो गया, चारों तरफ अर्धम फैल गया और अशान्ति छा गई ।

गुरुदेव ने पुनः कहा—मैंने यह दशा देखी और जीवों के कल्याण के लिए सन्त सतगुरु रूप धारण करके दुनियाँ में प्रकट हुआ मैं सच्चा गवाह तथा आत्म-साक्षी हूँ । मुझे न किसी से गरज है न किसी से वास्ता । न मन का ख्याल है न किसी विशेष धर्म से सम्बन्ध है । मेरा निजी जीवन स्वयं इस बात का अटल प्रमाण है कि मैं दुनियाँ का सच्चा आध्यात्मिक गुरु बनकर आया हूँ और जो बात स्पष्ट और सत्य है, कहता हूँ । दूसरों के कहने कहलाने से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । मेरी बात को कोई स्वीकार करे या न करे । मैं अपनी गुरु-आई मनवाने का किसी और गवाह का आश्रित नहीं हूँ । सूर्य अपना साक्षी आप है । सूर्य चमक रहा है तो उसे दिखाने के लिए दीपक की आवश्यकता नहीं है । वह स्वयं अपने बेजोड़ अस्तित्व का आप

उदाहरण है। उसकी तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती। जिनके आँखें हैं वे सूर्य को देखकर विश्वास कर लेते हैं और जिनके भाग्य में अभी तक चिमगादड़ और उल्लू की ही आँखें हैं वे सूर्य का दिव्य आलोक नहीं देख सकते। कबीर साहब भी ऐसे ही आध्यात्म के जगमगाते सूर्य हैं। वे इसीलिए ओछी और नीची समझी जाने वाली जाति में पैदा हुए जिससे अधिकारियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें और जो अनाधिकारी हैं वे उनसे दूर रहें।

कबीर साहब कहा करते थे 'मैं कौन हूँ' इसको कोई नहीं जानता। मेरे बाप कहते थे कि उन्होंने मुझे एक तालाब के पास पाया, मेरा पालन-पोषण किया और इसलिये मैं मुसलमान हूँ, हिन्दू कहते हैं कि मैं किसी विधवा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ जो मुझे जंगल में फेंक आई थी। यह लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार जो जी में आता है कहते रहते हैं। उनमें से किसी को भी खबर नहीं है कि मैं असल में क्या हूँ। न मैं यह हूँ, न मैं वह हूँ, न हिन्दू हूँ न मुसलमान हूँ।

'मुसलमानो नहीं मुझको खबर मैं कौन हूँ, क्या हूँ ?
न काफ़िर हूँ, न हिन्दू हूँ, मुसलमानों से अलहदा हूँ।'

वत्स, कबीर साहब की सी हालत मैंने जान बूझकर अपने व्यक्तित्व में पैदा कर ली है जिससे मुझको सब अपना समझें और मैं किसी का भी न रहूँ। इस कारण मेरी ओर केवल वे ही लोग आते हैं जिनके हृदय में आध्यात्म की जिज्ञासा है, दूसरे लोग मुझसे कतराते हैं। सूर्य अपने दिव्य आलोक से चमक रहा है। उसके प्रकाश में आँख वाले अपना काम कर रहे हैं। गंगा की निर्मल धारा अपने प्रबल वेग में बह रही है, जिन्हें गन्दगी पसन्द नहीं है वे उसके पवित्र जल में स्नान करके अपने आपको स्वच्छ और पवित्र बना रहे हैं।

सरोवर में कमल पुष्प खिल गया। भौरे, जिन्हें उसकी सुगन्ध प्रिय है, उसके आस पास मँडरा रहे हैं और शहद की मक्खियाँ जिन्हें शहद प्रिय है उसके आस पास भिनभिना रही हैं और शहद चूस रही हैं। मैं ज्ञान का ज्वलन्त दीपक हूँ, दूर-दूर से पतंगे उड़-उड़कर मेरे चारों ओर घूम रहे हैं। मैं शाहिद (साक्षी) बन कर आया हूँ, मेरे हाथ में शहादत का प्याला है। जिसको शहीद होना है वह इसको पीले। जिन्हें अभी तक जिन्दगी और दुनियाँ प्यारी है उनका दूर ही रहना अच्छा है। सब लोग अपने सम-विचार वालों के साथ रहना पसन्द करते हैं। भिन्न विचार वालों के साथ कोई रहना पसन्द नहीं करता। तुम इतनी दूर से चलकर यहाँ मेरे पास आये। सच्चाई का प्रेम तुम्हें यहाँ खींच लाया। इसी प्रकार औरों के वारे में भी समझो।

ऋषि कहते हैं कि ज्ञान तीन प्रकार का होता है, प्रमाण, अनुमान और शब्द। इन्द्रियों का ज्ञान (उदाहरण के लिए आँख, नाक, कान आदि का ज्ञान) प्रमाण है। दिल का ज्ञान अनुमान और सच्चे गुरु या धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञान शब्द ज्ञान है। इन बातों को मैं सत्य मानता हूँ और इसको कुछ और बढ़ा कर कहना चाहता हूँ। मैं ऊँचे स्वर से सबको सुना कर कहता हूँ कि आत्मा का ज्ञान तीन तरह से होता है। सुमिरन, भजन और ध्यान। यह तीन प्रकार की शहादतें (साक्षी) हैं जिनका मैं आदेश देता हूँ और जो मुझ से दीक्षा लेते हैं, जो मेरे हाथ पर बैत लेते हैं, अर्थात् जो मेरी शरण लेते हैं, मैं यह खजाना उन्हीं को देता हूँ।

मैं ब्राह्मणों से उनकी ज्ञान-सम्पत्ति नहीं छीनता क्योंकि वह मेरे किसी काम की नहीं है। मैं मुसलमानों से कहता हूँ कि वे अपना कट्टरपन छोड़ें। जो सुनते हैं वाह वाह, जो न सुनें वाह वाह। हाँ, मैं

अपने हँसों को, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, चेताने आया हूँ और उनकी ओर मेरी दृष्टि है। अपनी सच्ची आध्यात्मिक शिक्षा से उन्हें सच्चाई और हकीकत की ओर ले जाता हूँ। मैं इन तीनों बातों को यानी ईश्वर की वाणी जो वेद शास्त्रों में लिखी है (शास्त्रों की साक्षी), गुरुवाणी (गुरु की साक्षी) और दिल की साक्षी, का इस प्रकार प्रतिष्ठान करता हूँ। ईश्वर की असली वाणी तुम्हारे अन्दर है। वही सच्चा ज्ञान है। यदि ऋषियों ने उसे पहले सुना, नवियों ने और अवतारों ने सुना तो तुम अब भी उसको अपने अन्तर में सुन सकते हो—यह भजन है। जब तुम अपने दिल के पर्दों को फाड़कर अपने अन्तर में प्रवेश करके आन्तरिक दृष्टियों को स्वयं देखोगे, वही तुम्हारा निजी अनुभव होगा। यह अनुभव बराबर बढ़ता जायगा, और चूँकि मैं सन्त-सतगुरु और वर्तमान काल का सच्चा गुरु हूँ, यह मेरी साक्षी (साखी) मेरी वाणी है। कबीर साहब ने भी ऐसी ही साक्षी दी हैं और वह उनकी साखियों के रूप में हैं यही उनकी शिक्षा और शिक्षा का निचोड़ है, उनकी स्पष्ट बातें हैं। सबसे पहले मेरी वाणी, साखी को सुनो। वह पहली शहादत (साक्षी) है। फिर अपने मन में प्रवेश करके उसको देखो। यह मन की साक्षी और दूसरा सोपान है। और फिर अपने अन्तर का शब्द जो तुम्हारे रोम-रोम और रग-रग में गूँज रहा है, आत्मा के कानों से सुनो। यह तीसरी साक्षी है और सबसे महान है। पुस्तकों में जाल है। हर जगह धोखे का जाल बिछा रखा है और सब उनके धोखे में आ जाते हैं। वेद वास्तव में तो मेरा ही ज्ञान है किन्तु उस पर परदा पड़ा हुआ है। इसलिये मैं सारे पर्दों को फाड़कर असलियत को असलियत की दृष्टि से असलियत के भण्डार को दिखाने का प्रबन्ध करता हूँ जिससे जिज्ञासु पूर्ण स्वतन्त्र और मुक्त हो जाय। बहके हुए जीव युगों से बहक रहे हैं। मैं सामवेद हूँ और

सामवेद मेरा ही ज्ञान है और वह ज्ञान तुम्हारे अन्दर ही है, तुमसे बाहर नहीं ।

वेद हमारा भेद है हम वेदन के नाहिं ।
वेद बतावै भेद को, हम बतलावें ताहि ॥

प्रश्न—इस शहादत या साक्षी को प्राप्त करने का उपाय क्या है ?

उत्तर—सुनो । इस बात पर तुम्हें मैं कबीर साहब की एक साखी सुनाता हूँ ।

तीन बन्द लगाय कर सुन अनहद की तान,
बजा नगाड़ा शब्द का लाल खड़े मैदान ।
रग-रग बोली राम की रोम-रोम रंकार,
सहजे ही धुन होत है सोई सुमिरन सार ।
सहजे ही धुन होत है पल-पल घट ही माँहि,
सुरत शब्द मेला भया मुख की हाजत नाँहि ।
सुमिरन तो घट में करे घट ही में करतार,
घट ही भीतर पाइये सुरत शब्द भण्डार ।
कबीर माला काठ की लाख जतन का फेर,
मन माला को फेरिये जा में गाँठ न मेर ।
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माँहि,
मनुआँ तो दस दिस फिरै यह तो सुमिरन नाँहि ।
माला फेरत मन खुशी ताते कछु न होय,
मन माला के फेरते घट उजियारा होय ।

माला फेरत जुग गया मिटा न मन का फेर,
 कर का मनका डार दे, मनका मनका फेर ।
 माला फेरूँ न हरि भजूँ मुख से कहूँ न राम,
 मेरा राम मुझे जपे तव पाऊँ विसराम ।
 तन थिर, मन थिर, वचन थिर,
 सुरत निरत थिर होय,
 कहैं कबीर इस पलक को कल्प न पावै सोय ।
 जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाय,
 सुरत समानी शब्द में ताहि काल ना खाय ।
 जाकी पूँजी साँस है छिन आवै छिन जाय,
 ताको ऐसा चाहिये रहै नाम लौ लाय ।
 ऐसे मँहगे मूल का एक साँस जो जाय,
 चौदह लोक पटतर नहीं क्यों तू धूल मिलाय ।
 कहता हूँ कह जात हूँ कहा वजाऊँ ढोल,
 साँसा खाली जात है तीन लोक का मोल ।
 कबीर धारा अगम की सतगुरु दर्ई लखाय,
 ताहि उलट सुमिरन करो स्वामी संग मिलाय ।

शिष्य—अब मेरी समझ में बैत अथवा गुरु दीक्षा का रहस्य
 आ गया ।

गुरुदेव—दुनियाँ अन्धकार में पड़ी है । वेद-वेद के चिल्लाने
 वाले सबसे अधिक वेदों के रहस्य से अपरिचित हैं । जो वेदों को
 जानना चाहता है उसको चाहिये कि मेरी ओर ध्यान दे । मैं ही
 असली वेद हूँ ।

शिष्य — प्रभु, जिस अभ्यास की आप शिक्षा देते हैं वह धर्म शास्त्र के अनुरूप है या उसके विपरीत है ?

गुरुदेव -- चंचल मनुष्य का स्वभाव बन्दर जैसा होता है, किसी एक दशा में नहीं ठहरता और न वह किसी एक समस्या को हल करने देता है। कभी कुछ, कभी कुछ। तुमने अभ्यास का प्रश्न उठाया है वह अभी तय नहीं हुआ और बीच-बीच में तुम कई अनावश्यक बातें पूछ चुके हो। मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया था कि धर्म और जगत, दीन और दुनियाँ दोनों ही तुलनात्मक दशायं हैं और जब तक इन तुलनात्मक अवस्थाओं का ख्याल नहीं मिटाया जाता, सच्चाई और वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अभी तक तुम कुछ समझ नहीं सके। क्या कर्मकाण्ड धर्म की सीमा और उसके बन्धन में नहीं हैं ? और यदि है तब फिर उसकी ओर से ध्यान के हटाने की आवश्यकता है अन्यथा वास्तविकता का ज्ञान नहीं होगा। ध्यान के हटा लेने से यहाँ यह आशय नहीं है कि उससे विरोध और दुश्मनी कर लो और न उसको छोड़ दो, बल्कि उससे ऊँचे उठ जाने की आवश्यकता है, और वस जो एक का ख्याल रखता है, उसके भीतर दूसरे का ख्याल मौजूद है। वास्तविकता जानने के लिये इन दोनों ख्यालों से ऊँचा चढ़ना होगा क्योंकि वह वास्तविकता इन ख्यालों से ऊँची है। जो दीन और दुनियाँ के ख्यालों में फँसा हुआ है वह असलियत कैसे जानेगा। जब तक ऊँचे न चढ़ोगे, गेंद की तरह इधर-उधर ठोकर खाते रहोगे और लुढ़कते रहोगे। अब तुमने क्या प्रश्न खड़ा कर दिया, जिसकी अभी आवश्यकता नहीं थी। यदि मैं उत्तर नहीं देता हूँ तो तुम भ्रम में पड़ोगे। इसलिए ध्यान देकर सुनो कि जगत क्या है और धर्म (दीन) क्या है। जगत या दुनियाँ अहंकार का नाम है। जहाँ खुदी या अहंकार का काम हो, व्यबसाय हो, वह दुनियाँ है। घर-द्वार, पत्नी-पुत्र, रुपया-पैसा

धन-दौलत दुनियाँ नहीं है और इसे भ्रम में पड़ कर दुनियाँ न कहो अहंकार भरे जीवन का नाम दुनियाँ है। "मैं ऐसा हूँ, ऐसे कुल का हूँ, इतना पढ़ा लिखा हूँ, इतना धन मेरे पास है, मेरी इतनी मान मर्यादा है, इतनी सन्तान हैं, आदि ऐसे विचार और उनके अनुसार और उनसे सम्बन्धित जो व्यवहार जीवन में होता है, वही 'दुनियाँ या जगत' कहलाता है और जो वस्तु किसी सीमा तक इस अहंकार भरे जीवन का सर कुचले, मान मर्दन करे, वही 'धर्म' है। दीन और दुनियाँ, धर्म और जगत के सम्बन्ध में, मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ। इसे एक वार भली-भाँति समझ लो ताकि फिर दिल को चूहे की तरह बिल के अन्दर से फुदकने का अवसर न मिले। धर्म के अन्य अंगों का नाम कर्मकाण्ड है।

शिष्य—अभी तक यह विषय स्पष्ट नहीं हुआ। दीन और दुनियाँ की व्याख्या मैंने भली-भाँति समझ ली है किन्तु शरियत अथवा कर्मकाण्ड की व्याख्या अभी समझ में नहीं आई।

गुरुदेव हँसे और बोले— फिर तो मैं विवश हूँ कि हिन्दुओं के शब्दों और अलंकारों की सहायता से तुम्हें समझाने की चेष्टा करूँ क्योंकि उनसे मतलब पूरी तरह समझ में आ जायगा।

हिन्दू धर्म में मानव जीवन के चार मुख्य अंग किये गये हैं— (१) ब्रह्मचर्य, (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ और (४) सन्यस्थ या सन्यास।

ब्रह्मचर्य बचपन है। गृहस्थ जवानी और खानेदारी अथवा विवाहित जीवन है। वानप्रस्थ अर्धेड़ अवस्था और एकान्त सेवन है। सन्यास वृद्धावस्था, सबके साथ मिले हुए और सबसे अलग रहने की हालत है। जीवन के इन चार अंगों के चार कर्तव्य हैं। ब्रह्मचर्य

में शिष्य बनकर ज्ञानार्जन करना, दौड़ धूप और परिश्रम करना होता है। गृहस्थी में व्यवहार, पेशा, सामाजिक व्यवसाय और सांसारिक सम्बन्ध बढ़ते हैं। वानप्रस्थ में विचार तथा अन्यान्य चिन्तार्य हैं और सन्यास में तर्क, त्याग और निरासक्ति का भाव है। मानव जीवन के उक्त चार अंगों के यह चार मुख्य कर्तव्य हैं।

शिष्य इस व्याख्या से कुछ घबरा सा गया और निवेदन करने लगा—“भगवन्, हिन्दी शब्दों से मेरा परिचय नहीं है। मुसलमानों की बोलचाल में जो शब्द प्रचलित हैं, उनसे काम लेकर मुझे समझाने की कृपा कीजिये।”

गुरुदेव बोले—वत्स, तुमसे सब्र नहीं होता। यदि तुम मेरे शब्दों की ओर ध्यान देते तो सारी बातें समझ में आ जातीं, परन्तु तुम तो हर समय पैतरा बदलते रहते हो। खैर, कोई हर्ज नहीं। मैं तुम्हें समझा कर ही छोड़ूँगा। हाँ, इस तरह समझाने में कठिनाई और देर होगी। हिन्दू धर्म सबसे प्राचीन धर्म है, इसलिये इसमें प्रत्येक विचार पूर्णरूप से वर्तमान है।

इस तरह समझो कि एक लड़का है। लड़के में प्रायः आलस और सुस्ती का भाव रहता है और उस आलस के आवरण में बुद्धि और ज्ञान छिपा रहता है। सम्भवतः लड़के में इस सुस्ती और आलस के भीतर कार्यशीलता और प्रेम का गुण छिपा रहता है। उसे खेल-कूद में लगाओ, वह दौड़-धूप करे, गिरे फिर उठे, चले-फिरे, रोये-हूँसे इससे आलस और सुस्ती का आवरण फट जायगा और भीतर से बुद्धि एवं ज्ञान के साथ उसके पूर्व जन्म के संस्कार तथा इच्छार्यें उभर आयेंगी। जिस विधि से यह भाव उभार में आवें उसे मुसलमान ‘शरियत’ तथा हिन्दू ‘कर्मकान्ड’ कहते हैं।

आशय यह है कि लड़के से परिश्रम कराओ और काम लो। शरियत यानी कर्म शरीर से काम लेने का नाम है जिससे वह पोषित हो तथा अज्ञानता एवं आलस्य का आवरण दूर हो। समाज में उठक दैठक करो, वजू करके नियत बाँधो और दुआ पढ़ो। इसमें मजहब की पुख्तगी (परिपक्वता) होती है जो ब्रह्मचर्य की अवस्था से मतलब रखता है। शरियत-पसन्द तवियतें बच्चा हैं, उनसे यही काम लेना है। उसके बाद तरीकत है जिसका आशय है दिल को तरतीब देना। यह निशानी है जवानी की शुरूआत की। तरीकत रास्ते या पन्थ को कहते हैं। बच्चे में खूब जोर के साथ चंचलपन आ गया। अब यदि उसी में पड़ा रहेगा तो भगड़ा और बदमाशी शुरू करेगा। इसलिये उसे रास्ते पर डालना चाहिये, उसे दिल की तरतीब देने की शिक्षा देनी चाहिये। बुरी आदतों को छोड़कर भली आदतें ग्रहण करे, किसी विशेष कार्य में लगने की आदत डाले, एकाग्र अवस्था प्राप्त करे, चंचलता का भाव दूर हो। यह दोष या ऐज़ मुजाहिदा, मराक़बा और इस्तग़राक जिन्हें हिन्दुओं में धारणा, ध्यान एवं समाधि कहते हैं) से दूर हो जाता है। हिन्दू इसको उपासना या भक्ति भी कहते हैं। यह भक्ति पथ है। सूफ़ी इसी को 'इश्क' का नाम देते हैं। 'इश्क' से अभिप्राय किसी वस्तु से दिल लगाने से है जिससे दिल में एक जगह जमने, ठहराव होने की हालत पैदा हो। इसी को उपासना कहते हैं। 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'आसना' का अर्थ है 'बैठना'। उप+आसना, यानी समीप बैठना, पास बैठना। किसी एक ख्याल को दिल में जमाकर उसके पास बैठना अर्थात् बार बार उसका ख्याल करना, उससे लौ लगाना, यही उपासना है जिसे सूफ़ी 'मुजाहिदा' कहते हैं। नुमाज़ की उठक बैठक गई। अब दिल को केवल एक ख्याल पर लगाने की आदत डाली जाती है, और जब इस तरह बैठने और दिल लगाते रहने का केवल एक विचार रहने लगा तब 'तरीकत' पूर्णता को प्राप्त

हो गई, सिद्ध हो गई अर्थात् उसका आशय पूर्ण हो गया। अब वह 'गृहस्थ' की अवस्था से निकल कर 'वानप्रस्थ' की अवस्था में आ गया। दिल को शान्ति आ गई और शान्ति आ जाने से अब उसके अन्तरस्थल में सोच-विचार आरम्भ हो गया। फिर दिल के स्थान से निकल कर बुद्धि के स्थान पर आ गया। हर काम सोच-विचार कर करता है, बुद्धि के द्वारा प्रत्येक वस्तु को जानना चाहता है और जो बुद्धि को भाता है उसी को स्वीकार करता तथा अपनाता है। जो पसन्द नहीं आता उसे स्वीकार नहीं करता। यही 'ज्ञान' या सूफियों का 'मार्फत' है। बिना दिल की एकाग्रता के, बिना मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित किये 'ज्ञान' अथवा 'मार्फत' की स्थिति नहीं मिलती। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर हर वस्तु की वास्तविकता को जानने की चेष्टा करता है। जो वस्तुएं सदा रहने वाली हैं उनकी ओर आकृष्ट होता है, उनसे प्रेम करता है जिससे सदा सदा का मुख मिले। जो वस्तु नश्वर है, जिससे प्रेम करने में अन्ततः दुख होता है उससे मन को हटा लेता है। और जब उसको धीरे-धीरे यह ज्ञान हो जाता है कि सिवाय आत्मा और परमात्मा के सब कुछ नश्वर तथा दुखदायी है तब धीरे-धीरे उन सारी वस्तुओं से विमुख होता जाता है और पूर्ण रूप से परमात्मा में लीन रहने लगता है। इसी को सूफ़ी लोग 'हकीकत' और सन्त लोग 'सत पद' कहते हैं। सूफ़ियों की यही असली "तौहीद" के साथ साथ परमात्मा के साथ सम्बन्ध और उसके तद्रूप हो जाने का रहस्य है। इसी का नाम 'सन्यास' है।

'सन्यास' में साधक मन से सब कुछ छोड़ देता है और परमात्मा के सिवाय किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं रखता। इसकी दो स्थितियाँ हैं। पहली स्थिति में 'बेहमा', 'हमाओस्त' और 'हमा-

अज्ञोस्त' की समझ आ जाती है; और दूसरी स्थिति में "बाहुमा"
"बेहुमा," 'हमाअज्ञोस्त' और 'हमाअज्ञोस्त' की समझ आ जाती है।"

बेहुमा=असंग । बाहुमा=संग. ताल्लुक ॥

हमाअज्ञोस्त=सत्सत्, ब्रह्मवेदं सर्वं ॥

हमाअज्ञोस्त=तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥

अर्थात्—'बेहुमा' और 'हमाअज्ञोस्त' सबसे सम्बन्ध विच्छेद कर, सबको लय करके केवल 'एक' वही (प्रीतम परमेश्वर, मालिक) सामने हो । जो साधक ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं, संसार उन्हें पागल, दीवाना, मजजुब कह कर पुकारता है । इस पागलपने में एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है जिसका वर्णन कठिन है, केवल अनुभव किया जा सकता है । ऐसे ही प्रेम में दीवानी मीराबाई कहती है :—

ऐरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दर्द न जाने कोय ॥
घायल की गति घायल जानै कै जिन घायल होय ॥
जौहर की गति जौहर जानै कै जो जौहरि होय ॥

प्रेम दीवानी सहजो ने भी इस दशा का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित
किया है: —

प्रेम दिवाने जे भये मन भयो चकना चूर ।
छके रहैं घूमते फिरै सहजो देख हुजूर ॥
प्रेम दिवाने जे भये जाति वरन गई छूट ।
सहजो जग बौरा कहै लोग गये सब फूट ॥
प्रेम दिवाने जे भये सहजो डगमग देह ।
पांव परै कित का कहूं हरि सँवारि तब लेइ ॥

कब हूँ हक धक हूँ रहैं उठै प्रेमहित गाइ ।
 सहजो आँख मुंदी रहैं कबहूँ सुधि हूँ जाइ ॥
 मन में तो आनन्द रहै तब वीरा सब अंग ।
 ना काहू के संग हैं सहजो ना कोई संग ॥

योग की पूर्णता आ पहुँची है। प्यारी (आत्मा) अपने प्रीतम (परमात्मा) के सामने है। कोई पर्दा बीच में नहीं है। 'मैं' और 'तू' का अन्त हुआ ही चाहता है। इसके बाद :—

मुस्करा कर वो शबेवस्ल किसी का कहना ।
 राज की बात है अफशा ये कहीं राज न हो ॥
 होता क्या है (खुसरो के शब्दों में) —

मन तो शुदम तो मन शुदी मन तन शुदम तो जाँ शुदी ।
 ता कस न गोयद बाद अज्जीं मन दीगरम तो दीगरी ॥

अर्थ—मैं तू हो जाऊँ, तू मैं हो जा—मैं शरीर बनूँ तू उसमें जान हो ताकि बाद को कोई यह न कहे कि मैं और हूँ, तू और है।

यह तो होता है, किन्तु उसके व्यवहार में पहले की अपेक्षा भिन्नता आ जाती है। कहाँ तो वह कान्ता सब कुछ छोड़ छाड़ कर कंत की बनी थी, कहाँ अब यहाँ आकर यहाँ की सभी चीजों को कंत का समझ कर उस कंत के नाते साज सँवार करती है, यही 'बाहुमा' है। लेकिन उसका अपना निजी कोई सम्बन्ध उन वस्तुओं से नहीं होता, यही 'बेहुमा' है। उन चीजों को कंत का समझना और कंत के ही नाते बर्तना "हुमा—अजोस्त" है, अतः दूसरी अवस्थाओं में 'बाहुमा' और 'बेहुमा' (सब के साथ होते हुए सबसे अलग) और 'हुमा—अजोस्त' (सब कुछ उसी से है) की समझ आ जाती है।

कर्म, उपासना ज्ञान और आत्मज्ञान । (शरियत, तरीकत, मार्फत और हकीकत)

“हे वत्स, प्राचीन ऋषियों ने जो शिक्षा दी है वह अत्यधिक सुन्दर, सम्पूर्ण और प्रकृति के अनुरूप है। तुम देखते हो कि किसी राज्य के प्रबन्ध में उसके कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी की आज्ञा मानते हैं। यह शरियत अथवा कर्मकाण्ड के अनुकूल है। मन्त्री, पार्शद, कोतवाल, अफसर, ‘पन्थाई’ हैं जिन्हें सूफ़ी ‘अहले-तरीकत’ कहते हैं। इनको जो आज्ञा ऊपर से मिलती है उसका पालन स्वयं करते हैं और अपने मातहत लोगों से कराते हैं। इस काम में वे अपने स्नेहपात्रों व स्वजनों के लाभ को मन में नहीं आने देते। इन सबके ऊपर सम्राट होते हैं जो सबको अपनी मातहती और देख रेख में रखते हैं। राज्य के रहस्यों को जानते हैं। यह ज्ञानी और सत्यप्रिय होते हैं जिन्हें सूफ़ी लोग ‘मार्फत-पसन्द’ कहते हैं। सम्राट से ऊँचे सन्त और फ़कीरी-पसन्द होते हैं जो आत्मज्ञानी होते हैं और सूफ़ियों में जिन्हें ‘हकीकत-पसन्द’ कहते हैं। यह चौथा पद है। ‘शरियत’ वालपन, ‘तरीकत’ यौवन और ‘मार्फत’ अधेड़पन है। कर्म उपासना और ज्ञान यह तीनों मन के रूप हैं। ‘कर्म’ है इन्द्रियों को बश में करना, ‘ज्ञान’ है बुद्धि को शुद्ध करना और जो इन सबसे ऊपर निकल गया उसी को आत्मा और परमात्मा का असली ज्ञान प्राप्त होता है। यही परमसत्य और सूफ़ियों की ‘हकीकत’ है। सूफ़ियों ने ‘मार्फत’ और ‘हकीकत’ को एक साथ मिला दिया है, इसीलिये लोग बहुधा भ्रम में पड़ जाते हैं।”

“हर प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, तीन वस्तुओं का मिश्रण है। (१) शरीर (२) मन (३) आत्मा। प्रत्येक का स्तर पृथक-पृथक है। इसलिये किसी विशेष काल में जिस विशेष शरीर में जन्म मिला है उसका सम्बन्ध और रहनी सहनी उसी के स्तर के अनुरूप होती है। इस सम्बन्ध और रहनी-सहनी को सूफ़ी ‘शरियत’, ‘तरीक़त’ और ‘मार्फ़त’ कहते हैं। शरियत कर्मकाण्ड है, तरीक़त उपासना है और मार्फ़त ज्ञान है। जिसकी दृष्टि शरीर पर रहती है और जो अपने को देह ही समझता है और अभी तक देह को छोड़कर जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर नहीं गई उसको चाहिए कि ‘शरियत’ (कर्मकाण्ड) को ध्यान में रखे। जिसकी दृष्टि शरीर से हटकर मन (दिल) की ओर आकृष्ट हो गई है, वह अपने आप को मन समझता है, इच्छाओं का समूह समझता है और उनको पूरा करने में लगा रहता है। यही उसके लिये उपासना है जिसे सूफ़ी ‘तरीक़त’ कहते हैं। जिसका ध्यान मन से हट कर बुद्धि पर आ गया है और ईश्वर एवं आत्मा का सोच विचार आरम्भ हो गया है यह उसके लिये ज्ञान अथवा ‘मार्फ़त’ है। जब ध्यान बुद्धि से हटकर आत्मा और ईश्वर की ओर जाता है उसे आत्मज्ञान कहते हैं जो सूफ़ियों की ‘हकीक़त’ है। जो जैसा है यानी जिसका जैसा विचार है वैसा ही करे और करता रहे तब तो रास्ता ठीक चलता है, और यदि उसके विपरीत चलता है तो राह से बेराह हो जाता है।”

“मार्फ़त या ज्ञान कहता है—‘दामन को पाक रखो, निर्लेप रहो। तरीक़त या उपासना कहती है—‘सबके साथ रहो और सब से अलग रहो’। शरियत या कर्मकाण्ड कहता है—‘काम किये जाओ’। ज्ञान में सबका त्याग है—सूफ़ी इसे ‘नफ़ी’ कहते हैं। सन्तों का यह निवृत्ति-मार्ग है। उपासना दो का मिश्रण है (Positive)

है, अर्थात् मिला-जुला है। इसमें निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों हैं। शरियत केवल बात ही बात है। 'हकीकत' सबसे ऊँचा। सूफ़ियों की भाषा में यों समझो :—

'माफ़्त' का वाक्य है—'ला इलाहा' अर्थात् 'कुछ नहीं', तरीक़त का वाक्य है 'अल्लाह' और शरियत का वाक्य है "मौहम्मद रसूलिल्लाह"। ज्ञान या माफ़्त में 'लय' होने का भाव है। सूफ़ी इस भाव को 'महवियत' (=तल्लीनता) कहते हैं। उपासना अथवा तरीक़त में भक्ति और प्रेम है। कर्मकाण्ड अथवा शरियत में धर्म या 'दीन' है। ज्ञान में न अस्तित्व है न गुण। उपासना में अस्तित्व है। कर्म में गुण-अवगुण दोनों हैं जिन्हें सूफ़ियों में 'सिफ़ात' कहते हैं। माफ़्त में 'ला' या 'नफी' अर्थात् 'न-कार' है तरीक़त में है देखना या दृष्टा बनना। शरियत अथवा कर्मकाण्ड में चेष्टा और परिश्रम करना है। 'ला' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'अदम' 'नेस्त' 'महवियत' और 'न-कार'—अर्थात् कुछ नहीं। 'मुशाहिदा' का अर्थ है साक्षात्कार करना। 'मुजाहिदा' का मतलब है जद्दोजहद करना अर्थात् अभ्यास करना।"

कर्म, उपासना, और ज्ञान, इन तीनों की तीन पृथक दशायें हैं। कर्मकाण्ड में है नाम का जप (सुमिरन) और भजन करना (नाम को कानों से सुनना—अजपा जाप)। इसको सूफ़ी 'इल्मुल यकीन' कहते हैं। यकीन माने विश्वास। श्रवण और पठन से जो विश्वास बने वह 'इल्मुल यकीन' है। 'तरीक़त' या उपासना में मनन और ध्यान है जिसको सूफ़ी 'एनुल यकीन' कहते हैं। माफ़्त अथवा ज्ञान सन्तों का निदिध्यासन है, सबको न-कार करना है। इसे सूफ़ी 'हक्क़लयकीन' कहते हैं। सर्वोच्च दशा 'हकीक़त' की है जो सन्तों का आत्मज्ञान और सूफ़ियों का 'रूहुल यकीन' है।

तीनों में से हम किसी को बुरा या भला नहीं कहते। क्यों भला बुरा कहें ? जो जैसा है वैसा है। तुम जैसे हो वैसे हो, जैसा काम वैसा इनाम; जैसा काल वैसा हाल; जैसी समझ वैसी बूझ।'

“तीनों की तीन अवस्थायें हैं—जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। जागृत अवस्था में कर्म, स्वप्न में उपासना और सुषुप्ति में ज्ञान है (किन्तु यह आवश्यक है कि वह अज्ञान से रहित कर लिया गया हो)। सूफ़ियों में जागृत को 'नासूत', 'स्वप्न' को 'मलकूत' और सुषुप्ति को 'जबरूत' कहते हैं।'

जो लोग अपनी वर्तमान हैसियत को समझ कर काम नहीं करते वे धोखा खाते हैं। हैं कुछ, कहते हैं कुछ। जो बना, वह बिगड़ा। यदि अपनी हालत और हैसियत से सावधान होकर काम किया जाय तो परेशानी का नाम और निशान न रहे। हरेक प्राणी में उसकी योग्यता के अनुसार यह ज्ञान रहता है कि वह बिना समझाये हुए समझ सकता है कि प्रकृति माता ने वर्तमान समय एवं दशा में उसके ऊपर क्या काम सौंपा है, और जो सौंपा है वही काम करना चाहिये। यदि यह समझ कर काम करेगा तो धीरे-धीरे उन्नति करता चलेगा। यदि बे-सोचे समझे और बिना अपनी योग्यता का अनुमान लगाये दूसरों की देखा-देखी काम करेगा तो गढ़े में गिर जायेगा और आगे की उन्नति का मार्ग रुक जायगा। यदि दृष्टि शरीर पर है अर्थात् अपने आपको शरीर समझते हो तो खाली मत बैठो, कर्म करो, जिससे अन्तःकरण की छिपी हुई शक्तियाँ और पिछली इच्छायें उभरें। यदि यह स्थिति प्राप्त हो गई है तो उपासना में मन लगाओ और यदि इच्छाओं से उपराम हो गये हो, चित्त सांसारिक पदार्थों से उदासीन हो गया है, आत्मा का विकास

प्रारम्भ हो गया है, इस माया-जगत से निकलना चाहते हो, इससे दुखी और उदास हो चुके हो तो फिर ज्ञान से नाता जोड़ लो। बात बिल्कुल साफ़ है। यदि समझ बूझ नहीं है और किसी की बात सुनने को तैयार नहीं हो तो कोई लाख समझाये, सब बेकार जायगा।'

मूरख के समझावने ज्ञान गाँठ का जाय।

काग न होवे ऊजला सौ मन साबुन लाय ॥

“सुनो ! यह जीवन शरीर, मन और आत्मा, इन तीनों से मिलकर बना है। तीनों को ही शिक्षा, शुद्धता और पूर्णता की आवश्यकता है। इनकी पूर्णता धीरे-धीरे होती है। जल्दी का काम शैतान का है। जल्दी सदा हानिकर होती। जो लोग अनजान हैं वे आत्मा की अपूर्णता का नाम सुनकर चौंक उठेंगे, क्योंकि अज्ञानियों ने आत्मा को पूर्ण मान रखा है। परन्तु जो आशय आत्मा की पूर्णता से लिया जाता है वह तो कोई अन्य वस्तु है। वह ऐसा आदर्श है जहाँ न ज्ञान है न उपासना और न कर्म। यह तीनों स्थितियाँ शरीर, मन और आत्मा तक सीमित हैं। वास्तविक वस्तु तो आत्मा की पूर्णता है और वह क्या है ? यह कहने सुनने का विषय नहीं है, वह इनसे परे है। कबीर साहब ने कहा है :—

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।

जैसा है तैसा रहे, कहैं कबीर विचार ॥'

यह ध्यान रखो कि समझने बूझने की बातें बस यही तीन हैं। पहले शरीर को, फिर हृदय को और फिर आत्मा को अच्छी तरह समझ लो। तब आगे का इरादा करो।”

गृहस्थ और वैराग्य—उदाहरण

शिष्य ने निवेदन किया—“प्रभु, विचित्र विधि से शिक्षा देते हैं। कृपया बताइये कि गृहस्थ अच्छा है या वैराग्य ?”

गुरुदेव बोले—“सुनो, एक उदाहरण देकर गृहस्थ और वैराग्य का भेद समझाता हूँ। एक दिन एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा ‘महाराज, मैं गृहस्थ हूँ, मन में परमार्थ का विचार उठा है। सामान्यतः लोग यही कहते हैं कि गृहस्थाश्रम सबसे अच्छा है, किन्तु मेरा चित्त वैराग्य पसन्द करता है। आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ ? दुनियाँ को छोड़ दूँ या गृहस्थ बना रहूँ ? किन्तु गृहस्थ में बड़े झगड़े हैं। नित्य नई चिन्तायें उठती रहती हैं और चित्त को शान्ति नहीं मिलती। गृहस्थ जीवन असह्य दुख-दर्द का जीवन है।’ मैंने संकेत के लिए कबीर साहब का वाक्य पढ़ा :—

धारे तो दोऊ भलीं क्या गिरही वैराग ।
गिरही दासा तन करै, वैरागी अनुराग ॥

बात उसकी समझ में नहीं आई क्योंकि संकेत में कही गई बात केवल अधिकारी जीव ही समझ सकते हैं। उस व्यक्ति ने कहा—‘महाराज, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई।’ मैंने कहा—‘अच्छा’। इतने में मेरा पुत्र आया। मैं बैठा हुआ कुछ काम कर रहा था। वहाँ कुछ प्रकाश कम था। मैंने कहा—‘बेटा, दीपक जला कर यहाँ ढूँडो।’ वह दीपक जला लाया और ढूँडने लगा। जब कोई वस्तु खोई हो तो मिले। न उसने कोई प्रश्न किया और न मैंने कुछ बतलाया। कुछ देर बाद मैंने कहा—‘तुम जाओ।’ वह

चला गया। फिर मेरी पुत्री आई। उससे भी मैंने वही कहा और वह भी उसी तरह दीपक जला कर ढूँडने लगी। उसको भी थोड़ी देर बाद भेज दिया और उस आदमी की ओर देखा और पूछा— 'तुमने कुछ समझा या नहीं?' उसने उत्तर दिया कि मैं बिल्कुल नहीं समझ पाया कि किस वस्तु की खोज के लिये दीपक मँगाया गया था। मैंने कहा— 'इस घटना पर यदि तुम ध्यान दो तो बहुत सी बातें तुम्हारी समझ में आ सकती हैं। प्रथम तो गृहस्थाश्रम का व्यवहार इस तरह हो कि लड़के वाले एक कल पुर्जे की तरह आपस में गुँथे हुए बड़े पुर्जे की आज्ञानुसार काम करें जिससे घर में खटपट का डर न रहे और शान्तिपूर्वक काम होता रहे।'

'दूसरे यह कि जो गृहस्थ शान्ति पूर्वक कार्य करता है और अपने कर्तव्य को पूरी तरह योग्यता पूर्वक निभाता है उसके घर के प्राणी भी उसका अनुगमन करते हैं और अनुशासन का ध्यान रखते हुए जीवन की समस्याओं को हल कर लेते हैं। कोई परेशानी नहीं होती। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने का रहस्य समझ में आ जाए तो फिर गृहस्थाश्रम बहुत ही उत्तम वस्तु है। यदि यह स्थिति न हो तो फिर वैरागी होना अच्छा है और उचित भी है। किन्तु इसमें एक भेद है। जो अपनी दुनियाँ न बना सका वह परमार्थ क्या बनायेगा। मन तो एक ही है, दोनों जगह वही काम करता है, चाहे वह दीन हो या दुनियाँ। दीन, दुनियाँ से अधिक दुष्कर है। जो सब वस्तुओं के रहते हुए चित्त को शान्त नहीं रख सकता वह सब वस्तुओं के न होने में कैसे शान्त रह सकता है? मैंने तुम्हें गृहस्थ का आदर्श दिखा दिया। अब तुम्हें घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।'

'उसने कहा— 'यह तो मैं समझ गया, किन्तु अब कृपा करके वैराग्य को उदाहरण द्वारा समझाइये।' मैं उठ खड़ा हुआ। उस

आदमी को साथ लेकर रैदास जी की कुटिया में गया। रैदास जी वर्ण के चमार थे। फटे-पुराने जूते गाँठा करते थे और उसी की कमाई से जीविका चलाते थे। जो मिलता, उसी दिन व्यय कर देते थे और यदि उसमें से कुछ बच जाता तो किसी साधु या फकीर को दे देते थे। अपने पास कुछ नहीं रखते थे। मैंने उनसे पूछा— “रैदास जी, जब रानी भाली आई थीं तब आपको एक हीरा दे गई थी। क्या आप बता सकते हैं कि वह हीरा कहाँ है?” रैदास जी बोले— मुझे तो उसका ध्यान तक नहीं रहा। मैं बहुत मना करता रहा परन्तु उन्होंने न माना और उसको इस भौंपड़े के फूस में कहीं रख गई हैं। आज आपने याद दिलाई। अगर कोई नहीं ले गया होगा तो वह हीरा इसी फूस में पड़ा होगा। मैंने ढूँडकर वहाँ से निकाल लिया। रैदास जी कहने लगे— ‘खेद है कि यह हीरा अब तक यहाँ क्यों पड़ा रहा। इसे आप किसी को दे दीजिये। मैं इसे अपने हाथ से छूना तक नहीं चाहता।’ मैंने ऐसा ही किया। तब मैंने उस आदमी से कहा— ‘ये वैराग्य की मूर्ति हैं। अब दोनों दशाओं में से जो तुम्हें प्रिय लगे और पसन्द आये उसे ले लो।’ वह बोला— ‘घन्य हो महाराज, आप वास्तव में महान हैं, आप ही कबीर हैं।’ मैं हँसा और कबीर साहब का यह पद मुझे याद आया :—

“कबीर कबीर तुम क्या करो, सोधो आप शरीर ।
पाँचों इन्द्री बस करें, सोई दास कबीर ॥

कबीर कबीर तुम क्या करो, समझो गुरुमत ज्ञान ।
काम क्रोध मद जो तजे, सोइ कबीर सुजान ॥

कबीर कबीर तुम क्या करो, छोड़ो जग की आस ।
अपना आपा जो लखे, सोई कबीरा दास ॥”

आज का प्रवचन यहीं पर समाप्त हुआ। शिष्य प्रणाम करके अपने निवास स्थान को चला गया।

अभ्यास और साधन

दूसरे दिन प्रातः शिष्य ने निवेदन किया—“महाराज, यह सेवक वारम्बार आपको अपने प्रश्नों से कष्ट देता रहता है। श्री महाराज उपासना की चर्चा करने वाले थे, परन्तु सेवक ने एक प्रश्न के बीच में अन्य प्रश्न उठा दिये। यह भी अच्छा ही हुआ क्योंकि बहुत से भ्रम मन में पड़े रहते। अब कृपया उपासना की उस विधि को बतलायें जो साधक के लिये यहाँ प्रचलित है और जिससे यह सेवक अभ्यास व साधन करने का अवसर पाये।”

गुरुदेव बोले—“अभ्यास, जिसे सूफ़ी भाषा में ‘अमल’ कहते हैं, नाम है ‘कर्म’ का; और साधन, जिसे सूफ़ी लोग ‘शगल’ कहते हैं, नाम है संलग्नता (मसरुफ़ियत) का। इन दोनों से आशय तो एक ही है किन्तु उन से दो दशाओं का पता चलता है। एक तो ‘काम करना’ और दूसरी ‘काम में लगे रहना’। इस अवसर पर तुम्हें केवल सिद्धान्त बता रहा हूँ और मौखिक शिक्षा दे रहा हूँ। जिस समय तुमको अभ्यास और साधन करने की इच्छा होगी, स्वयं बैठ कर उसको करा दूँगा जिससे वह भली भाँति समझ में आजाय। यह विद्या हृदय की विद्या है जिसे सूफ़ी ‘इल्म सीना’ कहते हैं। यह केवल एक हृदय से दूसरे हृदय को (सीना-ब-सीना) दी जाती है। यह पवित्र कार्य एकान्त में होता है। किसी सभा या समूह में नहीं।”

“जिस समय गुरु शिष्य की संगति में बैठे, प्रेम और आदर-भाव सहित अपनी आँखों से उनको इस तरह निहारता रहे कि

पलक न भ्रमने पाये, ध्यान की दृष्टि हर समय उन्हीं की ओर रहे। यह नेत्रों की दृष्टि द्वारा बाहरी दर्शन करने का अभ्यास है जिसे सूक्तियों में 'नजरे-मश्शाकी' कहते हैं। प्रेम का होना आवश्यक है। बिना प्रेम के काम नहीं निकलता है। यह प्रेम रसायन का प्रभाव रखता है। उसके द्वारा प्रियतम के रंग-रूप और आन्तरिक भावनाओं के प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करने की शक्ति आ जाती है। यह बात भली प्रकार समझ लो कि जब तक शिष्य को गुरु प्यारे न लगेंगे और जब तक वह गुरु को प्रिय न होगा तब तक दोनों के हृदय में एकोभाव एवं सच्चा प्रेम पैदा नहीं होगा—यह सिद्धान्त है।”

“जब संगति का रंग जमने लगे, अर्थात् जब गुरु के समीप बैठने में मन लगने लगे और शिष्य में गुरु के विचारों को ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न हो जाय (जो गुरु सोचे वही शिष्य के मन में आने लगे) ऐसी दशा में गुरु स्वयं उसको अभ्यास बतलायेंगे या शिष्य उनको प्रसन्न देखकर स्वयं उनसे पूछेगा और जो उपाय वे बतायेंगे उसके साधन में लग जाएगा।”

“गुरु की ओर दृष्टि जमाकर देखते रहने से उसमें ऐसी शक्ति आ जाएगी कि नेत्रों की पुतलियाँ स्वयं ऊपर की ओर उलटने लगेंगी और टकटकी बँधनी शुरू हो जायगी। इसमें एक बात की विशेष सावधानी रखनी चाहिये। गुरु से कभी आँख से आँख न मिलाये, यह धृष्टता और बदतमीजी है। यदि वह स्वयं तुम्हारी ओर देखें तो बात और है। इस प्रकार के अभ्यास से गुरु की शकल का ख्याल शिष्य के मन में आने लगता है यानी बाहर की अपेक्षा उसका ध्यान अन्दर को आकर्षित होने लगता है और फिर शकल भी गायब हो जाती है, सिर्फ एक ख्याल सा बना रहता है जिससे स्वयं ऊपर को उन्नति होती जाती है। यह बहुत ऊँचा अभ्यास है।

विना बताये हरेक को नहीं करना चाहिये । सन्तों में उसे गुरु की आरती उतारना कहते हैं और सूफ़ियों में 'तसव्वर शेख' या शगल राब्ता कहते हैं ।

“अभ्यास में तीन दशायें होती हैं और इनकी पाँच स्थितियाँ हैं । इन पाँच स्थितियों से बीच की पाँच दशायें हैं जिन्हें हिन्दू सन्त बंकनाल कहते हैं । इन सबका अभ्यास करना पड़ता है । विना अभ्यास के मौखिक न बताई जा सकती हैं और न समझ में आ सकती हैं । वास्तव में तो यह सात स्थान हैं और सात ही 'बंकनाल' हैं किन्तु अभ्यास से जिसने आरम्भ के पाँच स्थानों को तय कर लिया फिर अन्तिम दो बिल्कुल आसान हो जाते हैं, और उनके बताने की आवश्यकता नहीं रहती ।”

“बंकनाल का अर्थ हिन्दी में टेढ़ी नली या मिली हुई गुत्थी है । 'बंक' का अर्थ है 'बाँका' या टेढ़ा और 'नाल' का अर्थ है (कमल की) नली । यह बीच का स्थान है ।”

“पाँच आध्यात्मिक स्थान यह हैं :—

हिन्दू सन्तों के अनुसार ।

१. भूः
२. भुवः
३. स्वः
४. महः
५. जनः

मुस्लिम सूफ़ियों के अनुसार ।

१. नासूत
२. मलकूत
३. जबरूत
४. लाहूत
५. हूत

“यह पाँचों स्थान प्रत्येक मनुष्य के शरीर में जन्म से ही वर्तमान रहते हैं। इनके नामों का संस्कृत भाषा से अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है, इसलिये इन अनुवादित शब्दों में आन्तरिक स्थिति के वर्णन की वह प्राकृतिक शक्ति नहीं रही जो मूल भाषा के शब्दों में है। असल असल ही है और नकल नकल ही। अभ्यासियों को अभ्यास करने से आत्मिक लाभ तो अवश्य होता है किन्तु अनुवाद में दोष आ जाने के कारण शब्दों का वास्तविक भाव ग्रहण नहीं हो पाता। फिर भी मैं इन्हीं शब्दों द्वारा तुम्हें समझाऊँगा।

भूः (नासूत) का अर्थ है भूल जाना या ग्राफ़िल हो जाना। इस भूल जाने की दो दशायें हैं। एक तो अवगुणों के कारण भूल जाना और दूसरे सद्गुणों के कारण भूल जाना या ग्राफलत में आ जाना। अवगुणों और सद्गुणों को सूफ़ी भाषा में क्रमशः ‘औसाफ़े जमीमा’ और ‘औसाफ़े जमीला’ कहते हैं। पहली दशा बुरी है, दूसरी अच्छी। भूल या ग्राफलत अज्ञान का दूसरा नाम है। जो व्यक्ति सांसारिक पदार्थों में फँसा हुआ है वह भूला हुआ है, ग्राफ़िल है, और अपनी हानि कर रहा है। किन्तु जिस व्यक्ति को मालिक का विश्वास तो है परन्तु उसे अनेकता एवं एकता (सूफ़ियों की भाषा में कसरत एवं वहदत) की खबर नहीं वह ज्ञान पाने का अधिकारी है। उसमें संस्कार और अधिकार है। पहले प्रकार का व्यक्ति जो संसार के भोगों में फँसा हुआ है, आध्यात्म विद्या की शिक्षा का अधिकारी नहीं है क्योंकि वह अभी तक हेवानी ख़वास (पशुवत् इन्द्रिय भोग) से ऊपर नहीं उठा है। किन्तु दूसरा कुछ ऊँचा उठ गया है, उसमें ईश्वर के प्रति विश्वास है, ईश्वर के अस्तित्व को मानता है। यही विश्वास उसको धीरे धीरे आध्यात्मिक उन्नति का पूरा अवसर प्रदान करता है। जो मनुष्य नास्तिक है

वे मूढ़ अवस्था में हैं। कोई शिक्षा उन्हें लाभ नहीं पहुँचा सकती क्योंकि जब नींव ही नहीं तो इमारत किस पर खड़ी की जायगी।

भुवः (मलकूत) नाम है दैवी गुणों का। इस स्थान पर आने से हृदय में शुद्धता और पवित्रता आती है। दैवी गुण सम्पन्न मनुष्य की पहचान यह है कि वह समस्त भले और उत्तम गुणों को परमात्मा के दिये हुए ही मानता है। अन्य किसी को उसमें साक्षीदार नहीं करता।

स्वः (जवरूत) नाम है ईश्वर साक्षात्कार का जिसे सूफ़ी मुशाहिदा-रब्बावी कहते हैं। इस स्थान पर पहुँच कर अभ्यासी हर प्रकार के अनुभवों और आन्तरिक दृष्यों (सूफ़ी भाषा में मुशाहिदात और मुआनक़ात) को अर्पण कर देता है और आप बेपरवाह हो जाता है। इस स्थिति के आते ही उसके हृदय में अनुभव और ज्ञान पैदा होने लगते हैं।

महः (लाहूत) का अर्थ है "ईश्वर एक है और उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं है, न हुआ है, न था और न होगा।" इस स्थान पर पहुँच कर सच्चा साधक आस्तिक एवं एक-निष्ठ हो जाता है। ऐसे साधक को सूफ़ी लोग खुदा-परस्त, वहदत-परस्त और वाहिद कहते हैं। इस स्थान से अनेक से एक पर आने की स्थिति आती है जिसे सूफ़ी तौहीद की मंज़िल कहते हैं।

जनः (हूत) का अर्थ है 'होना'। पारब्रह्म परमेश्वर जिसे सूफ़ी हस्तिये-मुतलक़ या ज़ाते-मुतलक़ आदि नामों से पुकारते हैं, के विचार की इतनी पुष्टि कर लेना कि जो कुछ है वह सच्चा मालिक (ज़ाते-हकीक़ी) है और उसके सिवाय और कोई नहीं है। उसी में अपने आपको लय करने का प्रयत्न करना।"

आज इतना ही बताने के बाद सत्संग विसर्जन हुआ। शिष्य चुपचाप गुरु वाक्यों को हृदय में धारण करके अपने निवास-स्थान को चला आया।

नासूत (भूः) के अन्य नाम सूक्तियों में यह हैं :—आलमे-महसूस आलमे अहसासा, आलमे-पिन्दार, आलमे-वेदारी।—(जागृत अवस्था)।

मलकूत (भुवः) के दूसरे नाम हैं:—आलमे-अरवाह (पित्रलोक)—आलमे-गौर, आलमे-लतीफ़ (सूक्ष्म अवस्था) और आलमे खवार—(स्वप्न अवस्था)।

जबरूत (स्वः) के दूसरे नाम हैं:—आलमे-लाज़िम, आलमे तमकीन, आलमे-बेनक़श, आलमे-इस्मोसिफ़ात—(गहरी नीद का आना—सुषुप्ति अवस्था)।

लाहूत (महः) के दूसरे नाम हैं:—आलमे-मुतलक, आलमे-हकीक़त और आलमे जात।

यह चार स्थान सिफ़ाती (सगुण) हैं। पाँचवाँ स्थान हूत (जनः) ज़ाती यानी निर्गुण है।



अध्याय ५

शिष्य पर कृपा और दर्शन

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर शिष्य गुरुदेव के सत्संग में पहुँचा। चरणों में पुष्प अर्पित किये और आज्ञा पाकर एक ओर को बैठ गया। गुरुदेव ने अत्यन्त कृपा करके उसे बाहर का पट (द्वार) देने और अन्तर का पट खोलने की विधि बताई। तीन बन्द (आँख, नाक और जिह्वा बन्द करना) लगाने का रहस्य समझाया। चौका देने की विधि बताई। शिष्य ने आसन पर बैठकर जब ध्यान में नेत्र बन्द किये तब गुरुदेव ने अपने दाहिने हाथ के अँगूठे से उसकी भौंहों के बीच की जगह को धीरे से दोवार छू दिया। वह एक दम जोर से चिल्लाया और फिर अचेत हो गया। गुरुदेव उसे इसी दशा में छोड़ कर बाहर चले गये और घण्टों तक अन्य जिज्ञासुओं से बातें करते रहे। फिर जब कमरे में लौट कर आये तो शिष्य को चुपचाप उसी दशा में अचेत पाया। उसके सिर पर प्रेम पूर्वक हाथ फेर कर पूँछा—“वत्स, क्या हाल है?”

शिष्य ने आँखें खोल दीं और बोला—“प्रभु! जीवन का लक्ष्य आपकी महती और अनुपम कृपा से प्राप्त हो गया। जिस इच्छा को लेकर स्वदेश से निकला था, वह पूरी हो गई। मुद्दतों इधर-उधर भटकता फिरा, किन्तु किसी से काम नहीं निकला।”

गुरुदेव—“काम कैसे निकलता ? तुम्हारा हिस्सा तो हमारे पास था । तुममें उत्तम संस्कार हैं । अब बताओ कि तुमने ध्यानावस्था में क्या क्या देखा ?”

शिष्य—“प्रभु ! आपके पहली बार अँगूठा लगाते ही मेरे ललाट पर एक ज्योतिर्मय चन्द्रमा प्रकाशित हो गया । दूसरी बार अँगूठा लगाने पर वह चन्द्रमा बीच से दो टुकड़े हो गया । मैंने देखा कि मैं कमरे से निकल कर ऊपर चढ़ा, प्रकाश के जगत का आश्चर्यजनक तमाशा देखा । वह सूर्य के उदय होने का स्थान था । सूर्य देवता अपनी सम्पूर्ण ज्योति एवं कलाओं के साथ जगमगा रहे थे । नहरें बह रही थीं, सुन्दर उपवन लगे हुए थे, पुष्प खिल रहे थे, महल सजे हुए थे, आध्यात्मिक तथा आत्मिक जन समूह (रूहानी मखलूक) इधर-उधर अलौकिक मुकुट पहने टहल रहे थे । वहाँ मुझे एक देवदूत मिला । उसने कहा—‘ऊपर चलो’ । मेरे हाथों में पंख लग गये और मैं ऊपर के लोक की तरफ उड़ चला । दूसरे और भी अधिक चमकीले सूर्य लोक में पहुँचा । वह देवदूत वहाँ तक पहुँचा कर बोला—‘मैं आगे नहीं जा सकता । यदि आगे बढ़ता हूँ तो प्रकाश से मेरे पंख और बाल जल जायेंगे । तुमको आज यहाँ तक की चढ़ाई प्राप्त हुई है । या तो इसकी सैर करो या आगे चले जाओ । गुरु की कृपा से तुम बहुत ऊँचे चढ़ जाओगे । उस परमपिता परमेश्वर के दर्शन कर सकोगे । खुदाये-अजीम को देख सकोगे । मेरी सीमा और पहुँच यहीं तक है ।’ यह कहकर वह आंभल हो गया और मैं ऊँचे लोकों की सैर करता रहा । । बड़े अच्छे-अच्छे गीत सुने जिनकी संसार में कोई उपमा नहीं । सुरीले राग सुनते-सुनते ऐसा बेमुग्ध हो गया कि तन-बदन की सुधि न रही । अचेत और आनन्द की दशा मुझ पर छा गई । मैं कब तक इस

दशा में पड़ा रहा इसका मुझे पता नहीं। जब प्रभु ने आकर मुझे जगाया तब मेरी आँखें खुली। यही मेरे देखने की संक्षिप्त कहानी है।”

गुरुदेव—“सुनो वत्स ! जो तमाशे तुमने देखे वे सूक्ष्म जगत के तमाशे हैं। यह न लक्ष्य हैं न ध्येय। यह रास्ते के बीच की बातें हैं। स्वर्ग और नर्क की सीमा यहीं तक है। आगे क्या है—यह साधन और अभ्यास करते रहने से तुम्हारी समझ में स्वयं आ जायगा। पंथ की सीढ़ियाँ और समस्याओं को तय करने पर कुछ काल तक गुरु के सत्संग की आवश्यकता पड़ती है और जब अभ्यासी के सारे दर्जे तय हो जाते हैं तब जाकर असली लय और पूर्ण लय की अवस्था प्राप्त होती है।”

उस समय गुरुदेव ने कबीर साहब का यह पद पढ़ा:—

मरहम (भेदी) होय सो जाने साधू, ऐसा देश हमारा है ॥
 वेद कतेब पार नहिं पावैं, कहन सुनन से न्यारा है ॥
 जात वर्ण कुल किरिया नाहीं संध्या नेम अचारा है ॥
 बिन जल बूँद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा ॥
 सुन्न महल में नौबत बाजे, किंगरी बीन सितारा है ॥
 बिन बादल जहँ विजली चमके, बिन सूरज उजियारा है ॥
 बिना नैन जहँ मोती पोये, बिन सुर शब्द उचारा है ॥
 जो चल जाय ब्रह्म जहँ दरसे, आगे अगम अपारा है ॥
 कहैं कबीर तहँ रहन हमारी, बूझै कोई गुरुमुख प्यारा है ॥
 मरहम०.....

शिष्य विदेशी था। उसके कान भारत वर्ष की उन धार्मिक मान्यताओं से परिचित नहीं थे जो बनारस के आस-पास उस युग में

प्रचलित थीं। उन दिनों फ़ारसी और अरबी भाषा के शब्द हिन्दी के साथ प्रचलित थे। इसी कारण गुरुदेव ने उसके साथ मिली-जुली बोली में वार्तालाप किया जिसे वह समझ सकता था। किन्तु कबीर साहब के पद और साखी उसकी समझ में न आये। उनकी गहराई में जाना हरेक की समझ की बात नहीं है। अतः उसने पूछा—‘प्रभु! इस साखी में किस विशेष विषय की ओर संकेत किया गया है।’

गुरुदेव—‘इसमें ब्रह्म विद्या की उच्च दशा और मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य का वर्णन है।’

शिष्य—‘कृपया इसकी व्याख्या सरल भाषा में कर दीजिये।’

गुरुदेव—‘कबीर साहब की वाणी वैसे तो बहुत सरल है किन्तु वह अत्यन्त गूढ़ भी है, हरेक मनुष्य उसे समझ भी नहीं सकता। इस साखी का भाव संक्षेप में यह है कि सिवाय भेदी के मेरे (ईश्वर के) रहने के स्थान का किसी को पता नहीं है। यह वह स्थान है जिसका जिक्र वेद, कुरान तथा हिन्दू मुसलमानों की किसी धार्मिक पुस्तक में नहीं है और न वे उसका सन्देश दे सकती हैं, क्योंकि वहाँ कान और जिह्वा की पहुँच नहीं है। कर्मकाण्ड तथा लौकिक रीतियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वहाँ जल के बिना ही वर्षा होती है और जो बूँदें टपकती हैं वे न मीठी हैं और न खारी। शून्य महल में हर समय नौबत बजती रहती है। सारंगी, वीन और सितार आदि वाद्य स्वयं बजते रहते हैं। जहाँ बिना बादलों के विजली चमकती है, बिना सूर्य के प्रकाश होता है। जहाँ आँखें नहीं हैं किन्तु धागे में मोती पिरोये जाते हैं। जहाँ बिना स्वर के शब्द हो रहा है। यह हालत परमेश्वर की ज्योति का दर्शन है जिसे सूफ़ियों में सिफ़ली तजाल्लयात कहते हैं। इससे ऊँचा ब्रह्म

यानी खुदाये-अजीम का मुक़ाम है। जब अभ्यासी चढ़ाई करके यहाँ तक पहुँचे तब ऊपर की ओर पग बढ़ाता है। फिर सबसे अन्तिम सीमा पर और उसके पश्चात् उसके लिए कोई सीमा नहीं रहती। अन्ततः सबसे ऊँचे दर्जे पर पहुँच जाता है। कबीर साहब कहते हैं कि ऐसा हमारे रहने का स्थान है। किसी विरले गुरुमुख शिष्य की ही पहुँच इस स्थान तक हो पाती है।'

शिष्य— 'क्या यह ऐसे आश्चर्य का स्थान तो नहीं है कि जहाँ परमात्मा भी न हो ?'

गुरुदेव— 'हाँ, वहाँ परमात्मा भी नहीं है और उस स्थान को सूफ़ियों में 'मुक़ामे-हैरत' कहते हैं।'

शिष्य घबराया और बोला— "जहाँ परमात्मा ही नहीं है वहाँ और क्या होगा ? परमात्मा से रहित तो कोई स्थान नहीं रह सकता। क्या यह शब्द नास्तिकों जैसे तो नहीं हैं ? ऐसे शब्दों को हमारे देश में कुफ़्र का कलमा कहते हैं। आखिर वहाँ होना तो कुछ चाहिये ?'

गुरुदेव जोर से हँसे और बोले— 'देखो, यद्यपि तुमने मेरे द्वारा बहुत कुछ सुना फिर भी भली-भाँति समझे नहीं और अभी तक संशय तथा द्विविधा में पड़े हुए हो। अब ध्यान से सुनो और भली प्रकार समझते चलो। खुदा और शैतान की मान्यतायें तुम्हारे हृदय के एक-एक तन्तु में घुस गई हैं और उनके भ्रम से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन हो गया है। क्या अब तक तुम्हारी समझ में यह नहीं आया कि ईश्वर के सगुण नामों को देने वाला और शैतान अथवा माया के भी नामों का रखने वाला, उसे गढ़ने वाला, मनुष्य ही तो है। सद्गुणों के समूह का नाम उसने ईश्वर रख दिया। और

दुर्गुणों के समूह का नाम उसने शैतान या माया रख दिया । सदगुण और दुर्गुण दोनों ही कल्पित हैं जिसे तुम्हारे यहां 'ख्याली' कहते हैं ।

यह नजर में आशिकों के बेदरंग ।

दोनों शैताँ और खुदा भी एक रंग ॥

(भावार्थ—प्रेमी भक्तों की दृष्टि में, जो परमेश्वर को पहचानते हैं, शैतान और खुदा दोनों एक ही हैं ।)

मनुष्य ने अच्छाई के सगुण रूप को अपनी कल्पना से 'रहमान' और बुराई के सगुण रूप को उसी कल्पना से 'शैतान' या माया मान लिया । दोनों ही आपेक्षिक तथा तुलनात्मक शब्द (relative terms) हैं, और जब तक तुलना की काल्पनिक ग्रन्थि वर्तमान है तब तक खुदा और शैतान, ईश्वर और माया का विचार रहता है, वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता और मनुष्य धार्मिक भगड़ों में फँसा रहता है । इसी भ्रम से छुड़ाना ब्रह्मविद्या का उद्देश्य है । यही साधक की साधना का अन्तिम लक्ष्य है । जब वह अभ्यास करके आगे की ओर अग्रसर होता है तब यह भ्रम मिटता है । विना अभ्यास के यह भ्रम और वहम मिटना मुश्किल है । ब्रह्म और माया (खुदा और शैतान) दोनों ही गुणों से युक्त हैं (सिफ़ाती हैं), और क्योंकि यह दोनों एक दूसरे के प्रतिकूल हैं, इसलिये जब तक एक का विचार रहेगा तब तक दूसरे का विचार अवश्य बना रहेगा । जब तक दोनों का विचार रहेगा तब तक परायापन, वासनायें तथा अनेकता का भाव बना रहेगा और मनुष्य के हृदय को चैन तथा शान्ति प्राप्त नहीं होने देगा । इन दोनों में से लक्ष्य कोई भी नहीं है । गुणों के घेरे पृथक होने का ही नाम 'मोक्ष' है । गुणों को छोड़कर परमसत्य परमेश्वर (जाते हकीकी) से प्रेम तथा

सम्बन्ध पैदा करना और फिर नाम और नामी, जिन्हें सूफ़ियों में सिफ़ात और ज़ात कहते हैं, दोनों ही के विचार को सदा के लिये मिटा देना सच्चाई है। यदि व्यक्ति ईश्वर को परमसत्य समझता है और भूलकर भी उसके मन में माया अथवा शैतान का विचार नहीं उठता तो कोई हानि नहीं। वह इसे इसी तरह समझ बूझकर अपने काम में लगे और जब अभ्यास करता हुआ वास्तविक सत्य अथवा परमसत्य के स्थान पर पहुँचेगा तब उसे समझ जायगा। तब सद्गुण, दुर्गुण तथा अन्य खटकों से छुटकारा पा जायगा। यह कबीर साहब की साखी का सार है। जो व्यक्ति शैतान और माया को मानता है वह उसे परमेश्वर का साभेदार बनाता है। जो व्यक्ति परमेश्वर को एक मानकर सच्चाई को समझ लेता है वह माया और शैतान के भगड़ों में क्यों पड़ेगा। जब परमेश्वर का कोई अन्य साभेदार ही नहीं तो फिर यह माया का शैतान उसके सिर पर क्यों सवार हो? यदि यह कहो कि परमेश्वर भलाई और माया बुराई है तब तो साभेदारी हो गई, और हिस्सेदार (जिसे सूफ़ियों में मुशरिक कहते हैं) बन गये। जब तक परमेश्वर के भ्रम के साथ उसके हृदय में शैतान का भ्रम वर्तमान है तब तक वह सचमुच साभेदार (मुशरिक) है।”

शिष्य—“प्रभु, यह विषय बहुत कठिन है और मेरी समझ में नहीं आया।”

गुरुदेव—“तभी तो कबीर साहब ने कहा है ‘समझे कोई गुरु-मुख प्यारा।’ जिस अभ्यास की तुमको शिक्षा दी गई है पहले उसको करते रहो। सन्तों के सत्संग से लाभ उठाते रहो जिससे दृष्टि ऐसी अनुभवी हो जाय कि वह एक असल को समझने लगे। जब उसमें यह योग्यता आ जाएगी तब उसको परमेश्वर की (जो समस्त

शक्तियों एवं अस्तित्वों की असल है) समझ आ जायगी। रोगी के रोग का स्वयं इलाज हो जाएगा, आपेक्षिक बातें (relative terms) स्वयं जाती रहेंगी। इसे इस तरह समझो। मटर है, और मटर एक वस्तु है। जब तक मटर को एक मानते हो तब तक उसमें दो का भाव नहीं है। अब बीच से तोड़कर मटर के दो भाग कर लो। ऐसा करने पर उसके दो पक्ष दिखाई देने लगेंगे क्योंकि उसका विभाजन हो गया। एक ब्रह्म है, दूसरा माया। एक प्रकाश है, दूसरा छाया। सूफियों के अनुसार एक खुदा है, दूसरा शैतान। एक अस-वात (Plus +) है और दूसरा नफ़ी (-Minus)। जब तक मटर के दोनों दाने अलग अलग दृष्टिगोचर हो रहे हैं तब तक दोनों ही आँखों के सामने आते रहेंगे और भ्रम में डालेंगे। दोनों दानों को एक कर लो, फिर वह दो नहीं रहेंगे, दुई का विचार मिट जायगा और एक ही दिखाई देने लगेगा। ब्रह्म और माया, खुदा और शैतान, दोनों के भ्रम को उस एक असल में, अर्थात् परमेश्वर में लय कर दो। भ्रम मिट जायगा और ईश्वर के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देगा। सन्तों की भक्ति इसी अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचती है। अभ्यास में लगे रहो जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता जाय, और जब उसमें शुद्धता आ जायगी और मन का दर्पण स्वच्छ हो जायगा तो परमेश्वर की झलक पड़ते ही स्वयं वास्तविकता का ज्ञान सहज तथा सुगम रूप से हो जायगा। अभ्यास के साथ यदि दीन और दुनियाँ, धर्म और जगत के झगड़ों की भी खिचड़ी करते रहोगे तो फिर बात कठिन हो जायगी और बहुत अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। शीघ्र, सहज तथा सुगमता पूर्वक काम नहीं बनेगा ”

शिष्य—“ऐसा प्रतीत होता है कि जिज्ञासु के लिए परमार्थ पथ पर चलना अलग एक तरह की उपासना है जिसमें उपासना, उपासक और उपास्य तीनों ही वर्तमान रहते हैं। मटर के दो

दानें तो उँगलियों से मिला कर एक कर दिये जा सकते हैं किन्तु जहाँ उपासना का ध्यान है वहाँ एकता का विचार कैसे आये ? यह बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई ।”

गुरुदेव—“जिस प्रकार उँगलियों से मटर के दो टुकड़ों को मिलाकर एक कर देते हैं, विलकुल उसी सिद्धान्त के अनुसार जिज्ञासु को पन्थ (साधन-मार्ग) भी काम करने की शिक्षा देता है । मिलाना तो दोनों ही में पड़ता है । पन्थ (तरीकत) के विषय में उसका रहस्य मैंने बार बार तुमको समझाया है किन्तु तुम समझ नहीं सके । वह रहस्य गुरु-भक्ति है । उपमा के तौर पर गुरु का स्वरूप मटर का साबित दाना है, उसमें ईश्वर और अवतार दोनों मिले हुये हैं ।

जाते-मुशिद को जब तूने किया क़बूल ।

दोनों उसमें आगए, हक़ और रसूल ॥

(भावार्थ—जब तूने गुरु की मान्यता स्वीकार कर ली और गुरु धारण कर लिया तो उसमें परमेश्वर और उसके अवतार, दोनों ही आ गये ।)

यदि तुमको मुसलमानों की धार्मिक शिक्षा पर पूरा विश्वास है तो उस प्रथा को मस्तिष्क में रखो जिसमें फ़रिश्तों को आदम को सिजदा करने की ओर संकेत है । आदम-परस्ती यानी मनुष्य-पूजा का नाम ही पीर-परस्ती यानी गुरु-भक्ति है । इसे न भूलो और तभी तुम पन्थ के वास्तविक उद्देश्य को समझ पाओगे ।”

शिष्य गुरुदेव के इन अन्तिम और स्पष्ट शब्दों को सुनकर अपने आप में न समाया । वह भाव-विभोर हो गया और गुरुदेव के

चरणों पर गिर पड़ा ।

गुरुदेव ने कहा—“मैंने तुमको ब्रह्मविद्या और उसके सहज मार्ग की शिक्षा दे दी । अब तुम्हें अधिकार है चाहे यहाँ रहो या अपने देश को लौट जाओ । हर जगह अभ्यास करते रहो । मेरी संगति का प्रभाव जाने वाला नहीं है । यह उस समय तक बना रहेगा जब तक तुम मुझ जैसे न बन जाओगे । खमीर का प्रभाव हर चीज को अपने रंग में बदल देता है । अब तुम दूर रह कर भी सूक्ष्म विचारों द्वारा हर समय मेरी संगति की कृपा की धार का लाभ उठाते रहोगे और मैं तुमसे हजारों कोस दूर रहते हुए भी बात-चीत करता रहूँगा तथा शिक्षा देता रहूँगा ।”

शिष्य कृत-कृत्य हो गया । गुरु के प्रेम प्रवाह में उसका हृदय उमड़ पड़ा । नेत्रों में जल भर आया, कण्ठ रुँध गया, कुछ बोल न सका और बहुत धीरे-धीरे अपना मस्तक गुरु चरणों में रख कर उनकी रज का चुम्बन लिया । कुछ काल और गुरुदेव की संगत में रहा, आध्यात्म विद्या की पूर्णता प्राप्त की और अपने देश को लौट गया । उसके पश्चात् फिर वह इस देश में लौट कर कभी आया या नहीं, इसके विषय में कोई जानकारी नहीं है और न जानने की आवश्यकता ही है ।

समाप्त

हे सत्गुरु, सच्चे मालिक, बादशाहों के बाद-
शाह, आशीर्वाद दीजिये कि जो व्यक्ति सच्ची
लगन और श्रद्धा-पूर्वक इस "गुरु शिष्य सम्वाद"
को पढ़ें उसके हृदय में ईश्वर का प्रेम पैदा हो
और ब्रह्मविद्या की शिक्षा का महत्व समझ कर
परमार्थ पथ पर अग्रसर हो ।

गुरुदेव सब का कल्याण करें ।

॥ ॐ शान्ति, शान्ति, शान्तिः ॥

रामाश्रम सत्संग के अन्य प्रकाशन

१. फकीरों की सात मंजिलें (संत सप्त-दर्शन)	६० पै०
२. अमृतरस	५-००
३. महात्मा रामचन्द्रजी महाराज का जीवन-चरित्र (सजिल्द)	५-०० ६-००
४. भजन संग्रह	३-००
५. Discourses on Hindu Spiritual by Param Sant A. K. Banerji Parts (1, 2 & 3) (Bound)	३०-०० each
६. सन्तमत प्रवेशिका	४-००
७. संत वचन (भाग १ से ५ प्रत्येक)	३-००
८. मारफत की गजलें	२-५०
९. नवनीत	२-५०
१०. घटमार्ग	२-५०
११. अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय	५-००

मिलने का पता :—

- (१) मैनेजर, राम सन्देश मासिक पत्रिका, राभाकृष्णा कालोनी,
गाज़ियाबाद (उ० प्र०)
- (२) डा० हरिकृष्ण भटनागर, कायस्थवाड़ा, सिकन्द्राबाद
जिला बुलन्दशहर (उ० प्र०)
- (३) डा० करतार सिंह, नेशनल होम्यो स्टोर्स, फतहपुरी,
दिल्ली ।